## Hfomage to Kashtrapriga JAWAHARLAL NEHRU

( 14 November, $1889 \ldots 27$ May, 1964 )


DESH SUPPLEMENT
14 November, 1964
No. 1
"1 have really no feeling of hatred against any country, any people or anyindividual. Naturally I may dislike people for this or that, for something they do or say-but that is only a passing phase. I do not dislike anybody."

Jawaharlal Nehru

## 4

## CONTENTS



> If any people choose to think of me, then I should like them to say: "This was the man who with all his mind and heart loved India and the Indian people. And they, in turn, were indulgent to him and gave him of their love most abundantly and extravagantly."

Vawaharlal Nether

'A Knight sons peur, sans roproche'

## $p_{\text {rincipal }}{ }^{\prime}$ <br> Message

I am pleased to know that the Editorial Board of Desh, the Colleg Magazine, is bringing out a special Desh Supplement to pay homage to the abiding memory of Shri Jawaharlal Nehru, our late beloved Prime Minister* and leader. I heartily associate myself with the feelings of admiration and sorrow-admiration for his manifold virtues and qualities of head and heart and sorrow on his sad, sudden death -which have been expressed by the contributors to this Supplement. I also share their eagerness and earnestness to pledge themselves to the service of India and all other causes which were so very dear and near to the heart of Shiri Nehru. Our homage will be no better than lip service to him if we do not take a vow to devote ourselves to the amelioration of the poor and the needy, to the defence of our country and preservation of her freedom which he and his colleagues in the battle for freedom won at such tremendous sacrifice; to usher in an era of plenty and prosperity and of equality of opportunity and status as citizens which is the real aim of Socialism-Socialism as understood and defined by him: to lead lives of ever-increasing toil for the all-round prosperity of the country which to him was the dearest of all the lands and the peoples in the world and to promote the cause of World Unity and World Peace without which the future of the race of man will be dark and meaningless. We must also cultivate the best of our instincts, feelings and thoughts and learn to lead healthy lives because it is absolutely necessary for leading useful lives. We must acquire steadfastness to ideals and perseverance in pusuit of what we believe to be right and instinctive hatred of everything that tends to demean or belittle our individuality. Lest we should falter we should imbibe the spirit of our great men amongst whom Shri Nehru was one. Hitch your wagon to a star : adopt the noblest ideals and follow the noblest exampices and I can assure you that you will never go wrong. Shri Nehru was the model for the nation during his lifetime and if we are to be true and loyal to him we must have him as our ideal-hero even now. His was the spirit of south : to push on to greater achievements. Let us, on this day, adopt as our motto the spirit of Shri Nehru: EXCELSIOR, and pledge ourselves to the service of India and the World.

# '‘ुच्छ समर्पय" 

## उस

## दिव्य <br> ग्रात्मा को

जिसने भारत एवं भारतवासियों को पूरे हृद्य तथा मस्तित्क से प्रेम किया विज्व विश्वांति के उस ग्रग्रद्त को जिसका नाम स्मरखा कर विश्व ग्राज भी भ्रद्वा से नतमस्तक हो जाता है उस महान् साहित्यकार, राजर्नीतिक एवं मानवता-प्रेमी को जिसका भाइतीय इतिहास ग्रपने शत-शत मुखों से यशोगान करके भी तुप्त नहीं होगा।

ग्राइये उस महान् ग्रात्मा को श्रद्वाअलि समर्पित करते हुए मत्य पवं ग्रहिंसा के पूर्वपरिचित मार्ग का श्रनुकरखा करते हुए भारत को महान् शक्रिशाली एवं बैभवशार्ली जनाने का दृढ़ त्रत लें

तेज कृष्टा भाटिया
(2)

# "OH CAPTAIN! MY CAPTAIN" 

Shyamal Bagchee, B.A. Hons. III year

As we set ourselves down to pen this editorial, our minds automatically turn to the memory of one "who with all his heart and soul loved India and the Indian people." In Pt. Nehru's death we have not only lost a great patriot and statesman, but also a lover of the whole human race, a philosopher, and a distinguished writer. His vision wide, his sympathies always with the oppressed, he was an epitome of all that was noble in human nature. His goal was to help in creating a world where no one suffers, where happiness is there in all hearts Panditji was a citizen of the world in the truest sense of the term, though an Indian to the core of his heart. He held no prejudices against any man of any nationality or faith, his sympathy was all-embracing.

As a writer, he has displayed not only a rare sensibility, a masterly treatment of the English language, but also the encyclopaedic mind that he had. He was a student of all branches of knowledge, all that was worth learning captured his heart and imagination. As a spaaker he was almost arresting, the compelling hypnotic spell of his voice from the ramparts of the 'Red Fort' is something which we have lost for ever, but his speeches and writings have become a legacy, a treasure which generations will cherish.

We who were born during the Second World War or the wake of the Indian Independence, will miss him most. For Pt. Nehru has been the greatest single influence on our mind, on all that we have learned, understood and imbibed For us, as for the rest of India, an epoch has ended. That Jawaharlal Nehru was the Prime Minister of India is but a fraction of the whole truth--he was our leader, our ideal, our protector and the greatest stabilizing influence in our life.

Today, he is not there in our midst, and though the protective umbrella has been removed, yet we walk into unk nown future emboldened by bis words, his deeds and the indelible memory of his personality. On us lies a great portion of the task to make the world a better place to live in, a happier, and more contented planet-which was his dream. Drawing inspiration from our memory of him, we re-dedicate ourselves to this task.

的牙要定
‘विनोद सागर’ बी० ए०
ग्रनुपम शीश की चंचल किरा युक्त से तुम क्यों नयनों से दूर हुए ？

तुम जो गए दीपक से ज्योति， ज्योति से उजाला रूठ गया।

तुम जो गए गुलशन से गुल，
गुल से सुगन्धि भी रूठ गई ।
हे मानवता के पुएय पुजारी，
तुम क्यों नयनों से द्र हुए।
जाते ही तुम्हारे इस युग से，
＇जग＇－सूर्य ग्रचानक ग्रस्त हुग्रा ।
＇सागर＇भी ग्रचानक बिलख उठा
हरियालीं भी सन रास बर्नी।
२७ मई सन् ६४ की यह तिथि मी，
स्वयं ग्रवने से ही रूठ गई ।
हे पंचशील के निर्माता सेनानी जवाहर，
तुम क्यों नयनों से दूर हुए ？
（4）

# कर्मयोगी <br> <br> जवाहर 

 <br> <br> जवाहर}

श्री म्रोम् प्रकाइा कोहली, एम० ए०
₹७ मई के दुदिन ने मानवता से उसकी महान् ग्रभिश्यक्ति छीन ली। इस छटना से शोक की जो लहर उतन्न हुई, वह्र ग्रब थम चुकी है। ग्रब स्थिर भाव से यह विचार किया जा सकता है कि उस 'महान् श्रभिज्यक्तक' में ऐसा क्या था जो श्रनुकरगीय है। वह श्रपने युग की विभूति था उ्रौर उसके व्यक्तित्व का संचटन श्रेष्ठ म;नवीग गुरों से हुग्रा था। उसके कार्यों ग्रौरर नीतियों के ग्रालोचक ग्रनेक थे, पर उसके व्यक्तित्व पर कभी किसी ने उंगली नहीं उठाई। राजनीति में उसके कट्टर विरोधी भी उसके र्याक्तित्व को, उसके मानव-पक्ष को सदैव श्रद्धा ग्रोर सम्मान से देखते थे । उसकी महान् न्रार्ग्रिक विशोषताग्रों में मानवता के लिए श्रौर किश्रेप रूप से श्रपने राष्ट्र के लिए सर्वोपरि महत्त्व की विशोषता है, उत्कट कर्म भावना 1 उसका सम्पूर्णा जीवन कार्य के प्रति समपित था, वह कर्म का निदर्द्रन था। मृत्यु से पहले की रात वह इस मन्नोष के साथ सोया था कि उसने 'सभी फ़ाइलों की जाँच कर ली हैं। क्या पता था कि ऐसी ग्रोर फाइलों की जाँच के लिए वह नहीं जागेगत, यह उमकी ग्राबिरी जाँच होगी। २ज मई की ग्राकस्मिक विपत्ति एक माने में श्राकस्मिक नहीं भी थी। भुत्रनेश्वर ग्रधिवेशन में ही उसकी पूर्वसूचना मिल चुकी थी। fित्रों श्रौर इष्टजनों ने, डॉक्टरों श्रौर सगे सम्बन्धियों ने कार्य से विश्राम लेने का ग्राग्रह किया था। पर उसकी चेतना में कर्म की जो लौ प्रज्चलित हो चुकी थो, क्या वह व्याधियों की भंभा से बुभ सकती थी? उसके लिए व्याधि ब्याधि नहीं थी, कर्म होनता हो सबसे बड़ी व्यक़ि थी । वह

रोग से पूर्शां मुक्त भी नहीं हो पैपाया था कि उसने ग्रपने को कर्म की तीव्र धारा को सर्मीवत कर दिया। पक्षाघात से दुर्बल देह लेकर भी वह सबलों ग्रौर स्वस्थों से श्रधिक काम करता था। ग्रद्भुत थी उसकी कार्य क्षमता !

श्रालस्य से उसका श्रपरिच्चय था। ग्राज का काम कल पर टालने की दुर्बल मनोवृत्ति को उसने कभी उभरने नहीं दिया। भारतीय अ्रालसी होते हैं, उसने ग्रपने जीवन के दृष्टांत से इसे मिथ्या प्रमाशित कर दिगा, वह सव्ताहों का काम दिनों में श्रौर दिनों का काम घंटों में करता था। कार्य को निपटाने की उसकी ग्रपनीं ही विधि थी। उसका रारीर बुद्धि का साथ देता था 1 उसका ग्रन्तर्बाह्य स्फूर्त ग्रौर गति री़ल था। 'ग्राराम हराम है’ का मनश्र उसने ग्रपने देश वासियों को सिखाया था। उसकी उटकट कर्म चेतना क्षरिएक भावववेरा का परिराग़म नहीं थी। पुष्ट जीवन-दर्शन उसका ग्रधिष्ठान था। लौकिक जोवन ही उसके लिए सब कुछ था। अ्याध्यालिमकता श्रौर रहस्यवादिता से वह कभी सन्तुष्ट नहीं हो सका। उसे डर था कि श्राध्यिएत्मिकता या रह्य्यवाद की दुनिया में खोकर कहीं वह कर्म से पराङमुख न हो जाए। उसे इहलोक के जीदन को रमशीय बनाना था। मानवता के काले धब्बोंउपनिनेशानाद. साम्राज्यवाद, जातिवाद, संकीराराराष्ट्र वाद छ्रौर युद्ध-लालसा को मिटाना था। वह मृत्यु के बाद के जीवन श्रौर तर्ववंचितन की जटिलताम्रों में नहीं उलभा, क्यों कि उसे इहलोक की जटिलताएँ सुलभानी थीं। उसने कहा थ', 'ग्सल में मेरी

दिलचस्पी इस दुनिया में ग्रैर इस जिन्दगी में है, किसी दूसरी दुनिया या ग्रानेवाली ज़िन्दगी में नहीं।

उसके समक्ष विस्तीरां कर्मंक्षेत्र था। उसे साम्राज्यशाही के बन्धन से ग्रपने देश को स्वतन्र करना था, एशिया, अ्रफीका अ्रौर 尹्रन्यन्र भी उपनिवेशवाद के विरद्ध सिर उठा रहे स्वतः्ञता के ग्रन्द्वोलनों को बलप्रदान करना धा, विश्व को युद्ध के त्रास से मुक्ति दिलानो थी, राजनीजि का नैसिकता से 'समभाव प्रमाशित करना था और स इसे बढ़कर राताबिदमों से गुलाम भारत का भौतिक घ्रौर सांक्कतिक पुनर्गठन करना था। देश़ झ्रौर विश习 की राजनीतिक-सामाजिक स्थिति हसका ग्राह्ब्नन कर रही थी। हैरो ग्रौर कैमिन्विज की प्राचीरें उस प्रसारशील व्यक्षित्व को कैसे ग्राबंद्ध कर सकती थीं। सन् १८१२ में स्ददेश लौtते ही वह राजनीतिक संधर्ष में जुड गया। चाहता तो राजनातिक संधर्ष से श्रलग रहकर धनी ग्रौर सम्पन्न परिवांर के बालकों की तरह ऐइवर्यंपूर्गा जीवन जी सकता था। पर वस्तुस्थिति से पलायन का उसकी मूल प्रकृति से ही विरोध था। कर्म में ही उसे शांवि मिल सकती थी। उसी ने पूर्रा स्वाधीनतः की सिंत्रार्जना की थीं। घ्रखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के बमझई ग्रधिवेशान में उसी ने ऐतिहासिक 'भारत छोड़ो’ प्रर्ताव पेश किया था। पूर्गां स्ताधीनता के लक्ष्य की घोषया कर चुकने पर जनता को इसकी प्राप्ति के लिए तैयार करने का नैंतिक दाधिव्व उसी के कल्धों पर श्रा पड़ा था। गांधी जी के निर्देशान में उसी ने जनता को पूर्शा स्वाधीनता की मंजिल तक पहुँचाया था। किन्तु स्वाधीन भारत पराधीन भारत से भी श्रधिक कठिन कसौौटी थः। बीसवीं शाताबदी के मध्यभाग में भी भारत मध्ययुग का जीवन जी रहा था। जनता खुद़ियों, परम्पराम्भों ग्रैर ग्र्रन्धविश्वासों में ग्राबद्ध थी। सांम्रदायिक कटुता ग्रौर द्वेष का

नंगा नाच हो रहा थः। देशी रियासतें नसूर्र बनकर राष्ट्रवल का ग्रपहररा कर रही थीं। कृषि श्रौर उद्योग पिछड़े हुए थे । त्रेकारी औौर दरिद्रता सुरसा की तरह मुँह हाये खड़ो थी। जातिवाद, प्रंतनाद ग्रौर भाषावाद की विघटनशील प्रवृत्तियाँ राष्ट्र को सत्व्वहीन करने पर उताए थीं। सामाजिक जीछन में विषमता गहर्री दैठ चुरी थी। विशव रंगमंच पर भारत का, ग्रत्यन्त प्राचीन देरा होते हुए भी, नए र ष्ट के रूप में अभ्यु्युध्य होना था। ऐसी स्थिति में हमारे कर्मयोगी की प्रनिक्रिया वही हुई जो होनी च. दिए थी। उसने ग्रपने दाईिश्व को समभार, देश के ग्रम्युत्थान का ढढ़़ संकल्प किया। ग्राध्धुनिक भारत्त के निमांाए की सुसपष्ट योजना उसकी चेतना में उदय हुई। उसके नेतृ:व में देश़ के ग्राथथक विकास की बहुमुखी योजनाएँ चुरू हुई। उसने हमारी मान्यताग्रों को बदला, नए मदिंदरों श्रौर नए तीर्थों का निर्मीएँ हुग्रा, लेतों ग्रौर कारख़तनो में ज़िन्दगी लहराने लगी, नए भारत के निर्माएा की नींव तेंज़ी से तैयार होने लगी। देशा्यापी इस महदुद्योग के मूल में व्याप्त थी उसकी अ्षक्षय प्रेर्या। ग़रीबी श्रौर विषमता पर उसने समाजवाद के हथौड़े से प्रहार किया ग्रौर व्यक्ति की स्वतन्रता के लिए लोकतन्ग की प्रनिष्ठा की। यह्री नहीं नवस्वतन्च भारंत को उसने विशव के र. प्र. मण्डल में गौरब पूरां उच्चपद पर प्रतिष्ठित किया। उसकी नीतियों के कायर्यंव्वयन में श्रुटि हो सकती है, पही नहीं उसकी कुछ नीतियाँ भी पर्चलित मानों पर खरी नहीं उत्र सकतीं, पर क्या कभी उसके संसंकल्प ग्रौर ग्यभिप्राय में भी शंका हो सकेगी ?

राष्ट्रीय स्तर पर उसने जिस महदुद्योग का उपक्रम किया, उससे कहीं बड़ा उपक्रम ग्रन्तर्रोष्ट्रीय स्तर पर युद्धविहीन संसार की रचना के लिए किया। युद्ध ग्रनिवार्य है या नहीं, इस मूल पर्न को छोड़ दें, तो मानवता को उसकी सबसे बड़ी देन यह है कि

उदने भपने जीवनकाल में मानच-सभ्यता को नष्ठ होने में ग्राए रखा।

ऊपर की पंक्तियों में हमने उस कर्मयोगी बोर पर्ष की जिस म्रसाधारशा कार्यक्षमता की चर्चा की है. उमकी प्रेरक राक्ति क्या है ? वहु त्रिविध है: भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परमपरा का गर्व, भारनीय जनना के व्यापक प्रेम की प्रापित ग्रौर मानवमम्यना को विकसित करने की चेतना। घ्रपने दे ${ }^{\text {T }}$ की सांस्कृतिक परम्परा से वह कितने ग्रभभभूत थे, इसकी मारमक व्यंजना उनको ऐनिहांसिक बसीयत से हो जाती है : 'मुभे फ़स है इस शानदार उत्तराधिकार का, इस विरासत का जो हमारी रही है ग्रौर हमारी है ै्रौर मुभे यह भी श्रच्छी तरह मालूम है कि मैं भी, हम सब की तरह, इस जंजीर की एक कड़ी हूँ जो कि कभी और कहीं नहीं टूटी है ग्रौर जिसका सिलसिला हिन्दुर्तान के ग्रतीत इनिहास के प्राग्म्म से चला ग्रा रहा है। यह सिलसिला मैं कभी नहीं तोड़े मकता, वयोंकि मैं इसकी बेहद कद्र करता है ग्रोर इससे मुभे प्रेर्या हिम्मत म्रौर हौसला मिलता है।' ग्रौर इससे भी ग्रधिक सशक्त प्रेराा है देश़वासियों का श्रविभक्त व्यार। व्यारं हमें प्रेरित करता है कि हम ध्यार करने बाले के प्रेम के योग्य ज्रनें। उसके श्रपने शब्दों में 'मुभे मेरे देश की जनता ने, मेरे दिन्दुस्तानी भाई ग्रौर बहिनों ने इतना प्रेम ग्रौर इतनी मुहब्बत दी है कि चाहे मैं जित्ता कुछ्छ करूँ, वो उसके एक छोटे हिस्से का बदला नहीं हो सकता। सच तो यह है कि प्रेम इतनी कीमती चीज्र है कि इसके बदले कुछ देंना भुमकिन नहीं है। इस दुनिया में बहुत से लोग हुए जिनको श्रच्छं समभணकर, बड़ा मंनकर, उनका ग्रादर किया गया,
qूजा गया, ... ...... लेकिन भारत के लोगों ने छोटे ग्रीर बड़े, ग्रमीर घ्रौर ग़रीब, सब तबको, बहनों और भाइयों ने मुभे इतनः प्यार किया कि जिसका बयान करन मेरे लिए मुरिकल है श्रौर इससे मैं दब गया। मैं ग्राशा करता हूँ कि मैं ग्रपने जीवन के बङकी वर्षों में ग्रपने देशवासियों की सेवा करता रहैं घौर उनके प्रेम के योग्य होऊँ ।' मानवसभ्यता के विकास की उसकीं सदिच्छा युद्धविहीन संसार की रचना के प्रयत्नों से ही प्रमाशिता है।

उसकी कर्मप्र रक राक्ति का स्रोत घ्यक्षय रहा है। इभने भारी से भारी विपद् में भी उसे सहारा दिया है। उसके जीqन में ग्रनेक ऐसे क्षरा ग्राए थे जबकि समर्थ मनुष्य भी डावांडोल हो उठते हैं, किस्तु वह ग्रविचल रहा। जीवन संगिनी कमल! यौवन को घ्यकेला छोड़ कर चली गई, पितः का संरक्षक साया उड गया, गुछुतुल्य महात्मा गांधी उस समय ग्रकेला छोड़ गए जिस समय उनके निर्देरान की सबसे ग्रधिक ग्रावश्यकता थी, पटेल भौर मौलाना जंसे सुखदु:ख के साथी भी जीवनयाशी की श्राखिरी मंजिल तक पहुँचने से पहले ही चल बसे, देश ने उसके उपदेशों को सराहा पर वह उनपर चला नहीं । fिश्रों ने विइवासघात किया, पड़ौसी भी धोखा दे गए ग्रैर सबसे बढ़कर जीवन के श्रंतिम काल में शररीर भी साथ देने से इक्कार करने लगा। पर मानवता का उन्नायक वहृ कर्मंठ सेनाीी ग्रपने गन्तच्य की श्रोर बढ़ता रहा। रारीशबल खूट गया, पर मनोबल बना रहा ग्रौर बना रहा मृत्यु से पहले की रात तक। उसका सम्पूर्यां जीवन कर्म के प्रति समरपित रहा। गीता का कर्मयोग उसमें पुनहुज्जीवित हुग्रा था।

# Glimpses of Nehru before Independence 

Dr. R. Bharadwaj

THE forefathers of the late lamented Jawaharlal Nehru belonged to Kashmir. In the beginning of the eighteenth century, when the Moghal Empire was crumbling, Pandit Raj Kaul, who enjoyed reputation for erudition in Sanskrit and Persian, was summoned by a royal firman to Delhi to teach Farrukh Siyar. He came down to the capital and took up his residence on the bank of the Nahar (canal), and for this reason he began to be called Kaul Nehru. It was how 'Nehru' became the surname of the family Several generations after, Pandit Ganga Dhar, grandfather of our hero, became the Kotwal of Delhi. In 1857 the Nehru family moved to Agra and thence, with the transfer of the High Court, to Allahabad. Pandit Gangadhar had three sons, the third being the posthumous Pandit Motilal, who was brought up by his eldest brother, Pandit Nandlal Vakil. Having graduated Pandit Motilal also began to practise law at Kanpur, but on his eldest brother's death he moved to Allahabad and soon distinguished himself as the topmost advocate.

Pandit Motilal begot Jawahar at Allahabad on 14th November, 1889, and ten years after purchased Anand Bhawan. At the age of five, the only son began to receive education like an English child and learnt how to read, write, swim and play tennis. Not for a single day he was educated in an Indian school. Munshi Mubrarak Ali
told Jawahar the anecdotes relating to the revolution of 1856 and also stories from the Alif Laila (The Arabian Nights), while the child's mother and aunt recited to him stories from the Ramayana and the Mahabharata. Among his teachers were some English ladies and also F. T. Brookes, a theosophist who shunned meat and drink and dressed like an Indian in dhoti and kurta. Once when Jawahar, under his influence, told his father Pandit Motilal, that he would not eat meat and go to a cinema or a theatre, Brooke's services were dispensed with: A Pandit taught bim Sanskrit and Hindi. Fond of swimming he took delight in dragging those relations or friends into the house pool who did not know how to swim. Sir Tej Bahadur Sapru was one of those who were afraid of water deeper than fifteen inches and he would scream aloud when Jawahar acted as a crocodile.

In 1905, at sixteen. Jawahar got admitted to the Public School at Harrow. He was a student, ordinary but intelligent, interested in football aud cricket. There he came in contact with Lala Hardayal who then studied at Oxford. Of his classfellows were the princes of Gaekwad and Kapurthala. Two years after he entered the Trinity College at Cambridge where he had a passion for boating and became a prominent member of the Indian Majlis, other members of which were Dr. Saifuddin

Kichiu, Dr. Sayed Niahumuủ, T. A. K. Sherwani, K. M. Khwaja and Sir Shah Muhammed Sulaiman.

Adventurous as Jawahar was, he went to Norway in 1909 with some of his friends and there while bathing he slipped into a glacier but happily an English friend of his was able to draw him out. In 1910 he took his M. Sc. and then joined the Inner Temple for the study of law and became a batrister at law in due course. Although he did not take part in politics, he was influenced by a wave of socialism. In 1912 he returned to India a full-fledged barrister steeped in Wesrern ways and habits. He began to practise law and help his father, but he had no interest in it. So in 1023 he left that profession for good and passed most of his time in friends' circles. debates on political subjects, and social service.

Jawaharlal attended the Congress Session in 1912 although he had done so in his boyhood too. In 1913 he became a member of the Provincial Congress Committee and began to parcicipate in its activities. In those days discrimination between the white and the black was rampant in Africa, and the Indian Government showed indifference towards the Indian emigrants. Gopal Krishna Gokhle. therefore, made a fervent appeal for funds to help them. A committee was formed for the purpose, of which Jawahar became Secretary. Later on he took great interest in the agitation at Allahabad for the protection of the rights of those labourers who had emigrated to Fiji Islands; He also
took an active interest in organizmg a procession on the death of Gokble.

In 1916 Jawahar was married to Kamla. He had one daughter, Indira. But the chaste lady did not keep good health and died during treatment in Europe. Her ashes were flown by air and immersed in the Triveni at Allahabad. The loving husband did not remarry.

In tounding the Home Rule League he co-operated with Dr. (Mrs.) Annie Besant along with others and became the Joint Secretary of its Allahabad branch. He put on kurta and dhoti.

Owing to the proclamation of the Rowlatt Act in 1919. Mahatma Gandhi headed a great agitation known as Satyagraha, which led Jawahar to become an extremist and take great pains in the investigation of the atrocities perpetrated at Jallianwalla Bagh. In 1920 he happened to stay at an hotel in Mussoorie with some members of his family, when he was advised by the Government to refrain from exchanging views with the Afghans. On refusal to give the undertaking, he had to leave the hill station within twenty fout hours; but owing to the illness of his mother he was allowed to go back. He had a big hand in founding The Independent, a daily, which came to have the largest citculation in India, but which had to be closed under displeasure of the Government. He was drawn to the Kisan agitation in $19: 8$ and it was owing to his untiring efforts that it assumed formidable dimensions from 1919 to 1921. This gave him an op-
portunity to mix with the poor masses of India, to dine and sleep with them and also to understand their difficulties, and ways and means to redress them.

In 1919 Mahatma Gandhi paid a visit to Pandit Motilal Nehru and Jawahar had a good opportunity of coming in closer contact with him. From 1920 onwards the Nehru family began to make sacrifices, too numerous to mention. Anand Bhawan, a palatial building, was dedicated to the Congress. Pandit Motilal led the Swarajya Party in 1925 , his son represented the Indian National Congress in a conference at Brussels to advocate anti-imperalism. Doth father and son became president of the Indian National Congress-the one in 1928 and the other in 1929 when the resolution for complete independence for India was passed. In 1931, Pandit Motilal left for his heavenly abode, and the Gandhi-Irwin Pact came into being. On 15 th January, 1934, an earthquake rocked the whole of Bihar, and Jawaharlal rushed there for social service. In 1935 he went to Switzerland, the ominous year when his beloved consort passed away.

In 1939 he visited Ceylon and China.

Jawaharlal went io jail ten times for the country's cause. His last imprisonment was in 1942 in connection with the 'Quit India' Movement of Mahatma Gandhi, the Mahatma's advice to the Indians being 'Do or die'. The Government adopted very stern measures to curb the movement, the atrocities perpetrated were simply shocking. Whole of India was in a state of lull, fear and political indolence; perhaps, also because of the Second World War. It was only in 1945 when the brave Jawaharlal came out of prison that the Indian masses had a sigh of relief and renewed enthusiasm at his fearless and roaring speeches.

Ultimately on 15th August, 1947, India got complete independence. I had often heard that Jawahar would become the Prime Minister, but I never thought he would ever condescend to become one. For I believed and still believe that he, a patriot, politician, scholar and orator, was much greater.

Jawaharlal Nehru was a man of deeds.
His father, a pearl ; he himself, a ruby.
The one, the cool brain ; the other, the warm heart,
Which sprang to the peoples of the world so wide.
And resides in the mind of the East and West
Associated deeply with Gandhi, guide,
With whom for Bharat's freedom be pined, fought, strove
And got it at last to the applause of all,

## सत्ताईस मई

बलभद्र प्रसाद ग्रोभा, बी० एससी०

हिन में रात,
न दूर्य न वात,
उमम और घ बराहट,
न उल्लास न कोई श्राहट।
२७ मई,
श्रंकित हर भारतीय के नहीं,
मानवता के ह्दय यर है,
भारत का नहीं विश्व का घातक शर है।
२७ मई,
अ्राज सम्पूर्ण मानवता रो उठी थी। घारित्री का दढ़ धैर्य टूट गया था,
ग्राज का दिन था, जब पुरुषार्थ
भाग्य के ग्रागे
२७ मई,
श्राज ही का दिन था,
तिधाता के भी अर्राँसू न रुके,
न सूखे।
ग्राज काल के कूर हाथों ने, बुभा दिया था दिया
इस विश्व के जीवन का।
मत्न सहम उठे, हाय इतना भय, इतना अ्रातंक, न देखः न सुना था,
सत्न चुप- त्राकाश, पृथ्वो, जड़-चेतन,
फुके-केतन।
मौन एक दूसरे को निहारते,

स्वर न फूटता था
होट हिलकर रह जाते।
चाहते थे सब कहना, 'भूटठ है' विश्वास मी कैसे हो ?
मानन मर सकता है, ग्राँस्ट्र भी बहा सकते हैं सान्त्वना भी धरा सकते हैं पर पर, मानवता का रूप ही मर जाये सुना ही नहीं था, तो क्या करते ? अ्यविश्वास के सिवा कहाँ विचरते ?
विधाता, देख, तू भी रो उठेगा।
विश्व से "लाल" नहीं शांति डठ गई है, नव युग की कान्ति उठ गई है। हाय-२७ मई क्या कर दिया तूने, राष्ट्र संब को विधवा के ग्राँगन सा कर दिया तूने, भारत को बे ‘लाल’ का भहल कर दिया।
यही न्याय था तेरा विधाता, इतना क्र.
इतना कठोर खेल खेला,
सब मेला
उजाड़ फेंका, उखाड़ फेंका।
काश यह दिन न ग्राता
२७ मई तेरी सुचह न होती,
पृथ्नी मानवता की महान् मूर्ति
यों न खोती
विश्व की श्राँखें गीली न हुई होती।
हुढ़्य का लहू जम तो न गया होता, तेरी सुवह, साँभ न हुई होती ।

## "This Country is Mine....."

Gurdarshan S. Mamik, B. A., (Old Student)

Acountry is great, not if it can make deadly bombs and other destructive weapons, not if it can make other cauntries bow before it with force, not if it has achieved tremendous progress in science and technology, but a country is great if its people are great, i.e., if its inhabitants have spiritual greatness, if they have great moral qualities, if they live and die for one another, if they do not distinguish and discriminate between man and man, if their motto of life is 'co-operation' and 'co-existence'. In this materialistic world people are craving for more comforts and more materialistic progress. They seem to be bent upon gaining more and more of ease, luxuries and power.

In the wake of this, they are losing their souls by giving no importance to the widening of intellect and promotion of spiritual faculties. Tbat is why there is no 'contentment' in people. It is the outcome of this that war clouds are hovering on the sky. People are scared of war breaking out once again. People have lost faith in one another. Nobody is prepared to trust anybody. Is this an emblem of progress and prosperity? Can we say that people are happy in the present time? Of course, not at all? Nobody can attain true happiness unless be has the great quality of contentment which can be achieved only through widening of intellect and cultivation of spiritual qualities
in himself.
The whole world is after material progress. In our country were born great spiritualists and intellectuals, who have left their impressions on us all. Since our country still looks upon great saints, intellectuals and spiritualists with awe and respect, therefore, this country is great. Here people still have reverent attraction and respect for spiritual and moral eternal qualities. Here, there are people who know the value of contentment and the way to be contented. We not only preach co-existence but also practise it. This land is great because the inhabitants of this land realize the value of unity in diversity. At the time of need of the Nation, every one gets prepared to sacrifice oneself and everything one possesses at the altar of the Motherland. We showed the whole world how we could be united when one of our neighbouring countries attacked us about two years ago throwing to the winds all notions of friendliness. The enemy must have well realized the toughness of the job to fight against a United Nation. Everyone got prepared to die for the cause of the nation. Our soldiers made the enemy feel and realize that the Indian soldiers were the top-most and the most daring ones in the world. This they could impress only, because, they stood together and resolved to fall together. We never knew that there could be a foe in the disguise of a
friend. We had never thought of meanmess. With this treachery of a so-ai.ed friend, now every one shall bocs with suspicion at one's friends. E:- we showed the entire world that riough we are most sacrificing for our sizads yet we can be the bitterest against our enemies.

We are basically a peace-loving country but, when it comes to that, we can be the toughest fighters. This is a well-established characteristic quality of the Indian. We still value the Man and not the glamour about him. This is why really great men are most honoured in this country. It is because of this that India is called, 'the land of the saints'; the land of the Buddha, Gandhi and Nehru.

But now the time is come when we must not only feel happy and contented by looking at our glorious past. It is high time we get cautious and prepare ourselves against the ensuing and hoveting danger which we apprehend from our erstwhile friends. The time is such that we cannot afford to risk any more treachery from any of our friends. We should try for the best relations with other countries but also remain alert and prepared for the worst. Let us pledge that we shall always live and die for our Motherland. The highest order of service which one can render to one's holy Motherland is to sacrifice oneself in the service of one's nation. Those who die for the cause of the Nation never die but remain alive for ever and become immortai.

Can any one of us think that all those
brave soldiers of India, yes, our land, who died in Ladakh or Nefa, fighting to repel the enemy from touching this holy land, can ever be forgotten? No, never! They have served the country in the highest order and their memory shall always burn in our hearts and shall always inculcate a deep sense of duty in the mind and heart of not only every Indian, but, in the heart and mind of every person who loves Freedom and lives to die for the cause of his freedom. Their memory shall always incite us to do good for the country, to live in the service of our country and when the time demands we should lay our lives at the altar of our country. We should serve our Motherland with whatever we have in our possession.

Now the time is come when there should be a revolution in the minds and hearts of every Indian. Each of us should realize the intensity of the movement. We should feel and realize that if the country lives then all of us live. but, if the country dies, all of us die. We had to go through untold sufferings and tortures for over 200 years before we could attain our freedom and that too only after the martyrdom of so many of the brave freedom-fighters Should we not pay our reverence and respect to those who sacrificed themselves to attain freedom of the Nation for us? Should we not keep their memory alive? Should we let go their sacrifices waste? No! No, we must never forget whatever they have done for us and try our best to live upto their hopes. We must not forget the day
when we took the pledge to throw the invaders out of our country and make India a free nation for all times to come. Let us renew our resolve and then work fot it, live for it and die for it. The call of the Nation demands only one thing: 'Service and Sacrifice $\qquad$ Let each Indian feel and say
proudly, with a burning urge to serve the Nation-I shall work for my Motherland, live for her and die for her, if it is demanded of me. This is my duty, first and last. because this country is mine." With these words let us pay our homage to our late Prime Minister, Shri Jawaharlal who lived and died for India.

## IN MEMORIAM•

Now you are gone, to join the ranks of those whose names will ever live in every heart with joyous fragrance, like the budding rose that was of you so intimate a part; you fought and strove to give our nation light, to bring it freedom, break its binding chain, you warred against a vast, imperial might, you suffered grief and anguish, loss and pain; but yet you fought, and when at last we won and took our place in freedom's glowing light you did yourself become the nation's sun and for her welfare laboured day and night. Now you are gone, and we who stay behind will cherish our sweet memories of you and strive with every power of heart and mind to make your dreams of glory come out true.

Dr. KARAN SINGH, Sadt-i-Riyasat, Jammu and Kashmir
*Reproduced from The Hindustan Times, New Delhi.

## "मौन श्रद्धांझ्जलि"

उमेश चन्द्र सक्सेना बी० ए० हिन्दी (fिपेशे) द्वितीय वर्ष

मन रो माता लाल तेरे बहुतेरे
विविध भ;रती द्वारा प्रसारित मनोरंजन कार्यछन मृनने में में इतना लीन हो गया था कि ग्रास पाम का वोध ही नहीं रहा था। अ्राँखे उनींदी सी हो्दोने नगी थीं श्रैर मैं निद्रा के प्रथम चरखा तक पहृं च चुका था! भपकी लेते - प्रचानक दोवने का, भfिध्य के गर्तं में क्या छिपा है, छसे कोई नहीं जान नत़ा ओं- मानच मन, सभी कुछ ज़ःने कां इन्द्धा से प्रपना समस्त जीवन उससग्गे कर देता है। 一 माँ के इस कहरा-कंदन विलाप से मेरा हृद्य त्रवित सा हो छठा। मैं श्रन्वानक मर्महृत सा दो डडा माँ के बच्चे के मरने पर कवि विन कस्ता-भावपूर्गां कर:दों में सएत्वना देने का प्रयतन ₹र ग्रा है - माँ ही ग्रथाह वेदना $\cdots \cdots \cdots$ कान के कूर हाथ किसी को भी नहीं छोड़ते छोटा-बड़ा-ग्र्रना-पराया- सभी व्यर्थ है ! काल
 चौँक पड़ा ! "ग्राज कंसे अ्मचानक ही यह विचार मेंरे मन में ग्रा रहे हैं ? "मृत्यु" इन द को निन्वा। दर क्या कभी स्वप्न में भी इसका विचार नहीं ग्राना चाहिए
.- गाना ग्रचानक ही बीच में रक गयः एक शोक-सूचक धुन बजने लगी भयानक ग्रनिष्ट की ग्राशंका से कांप जठा
"हमें अ्रल्यन्त्त शोक के स,थ यह समाचार समस्त जनता को देना पड़ रहा है कि देश के कर्लाधार, विशवशाँचि के म्मग्रूत महान नेता शी जवाहरलाल नेहर का घभी-झ्रभी लगभग दो बजे

उनके तीन मूर्ति स्थित निवसस-स्थान पर देहावासन हो गया"क्या यह सत्य है ? प्र्यथा एक भयानक स्वप्न ? "नहीं-नहीं"—"नेहरू जी इतनी शीघ्र नहीं जा सकते तो उन्होंने कहा था? "मेरे जीवन का अ्यन्त इतने
 वास्तविकता पर श्राया ने मेरा घ्यान ग्रपनी ग्रोर श्रार्कित किया $-\cdots$ हैलो हैलो- उमेश ! नेहर जी नहीं रहे
"वया कह् ₹ह्हे हो प्रभिताप! कहीं वागल तो नहीं हो गए हो ?'
"नहीं दोस्त"—नेहखं दी नहीं ₹हे
"भैंने श्रपने एक घंन्य पf चित के चहाँ फोन करके इस कथन की सत्यता जाननी चाही हाँ भाई हमें अ्यदसोस है ग्रापका कथन संत्य है गया ${ }^{-\cdots-}$ ! नीचे श्राया $-\cdots$

लोगों के समूह के समूह खड़े थे --, विचारखीय प्रमुख प्रइन था-नेहरु जी $\qquad$ इस दर्दनाक सम.चार से लोग शोक मग्न थेत्ल एक सज्जनकुछ ग्रसिथर और स्वतन्त्र विचारों वाले ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा "भाई, भगवान जो करता है अच्छ्छा ही करता है.... सभी उनकी ग्रोर अ्माइचर्यं से देबने लगे - सोन्दने से मनुष्य जी तो नहीं सकता युकक जो इस मृत्यु से म्रन्यन्त दुखी था, उनके कथन

ने उसके हु.ख की ग्रनिन्न पर धी का काम कियाअ्रग्नि भड़क ही उठी- युवक का इवेत मुख कुछ दु:ख, कोध अ्रौर रा।्ट्रनायक के प्रति ऐसे वचनों से एकाएक लाल हो उठा- उसने कुछ कहने के लिये मुंह खोला ही था कि हाथों ने त्रिजली की तेजी से श्रपना कार्य कर ही दिया ?
"तड़ाक! तड़ाक !!" चाटों की तोत्र घ्वनि सन्नाटे को चीरती हुई तीव्र से तीव्रतम होती गई;
 बराा में एकाएक गर्मी सी ग्रा गई ग"- नीच नी दे शद्रोही !!—उसकी म्रांखों में बून उनर ग्राया था । "‘मैं तेरा बून पी लूँगा ! चला जा, मेरी प्राँलों के सामने से !’ किसी से दृधि्ट मिला सकने में दे श्रसमथं- उनका ग्रपमानित ब श्राहत चेहरा- वह
 श्रोर

वहु युत्रक रमेशा था
मई की विर्लचिलती धूप, सूर्येदेव ग्रपनी प्रच्चएडता का प्रदर्शान पूर्गां रूप से कर रहे थे। मैदान में सभी लोग निस्तब्ध संज्ञाहीन ग्रौर मीन थे, कुछ सिसक रहे घे, कुछ्छ संवेदना प्रकट कर रहे थे। रदन अ्रविराम गति से बढ़ रहा था। इोक विन्बल लोग श्राँसुश्रों से घ्रपने दु:ख को शाँत करने की चेष्टा कर रहे थे - पर-। रोने से दु:ख भ्रौर भी उमड़ रहा


पर यह क्या ? वातववराए एकाएक परिवर्वतित हो चला, काली श्रांधी का वेग, प्रलयंकारी विनारा का चित्र्या दिखाने को ग्रतुर था! सन्नाटा बढ़ रहा था, मन के प्रज्ञात कोने में ग्रायं का की तरह । दीर्ष निशवास ग्रौर गम्भीर उच्छबवास वाताकरशा की गम्भीरता में विषाद ग्रौर शोक भर रहे थे। "राष्ट्र

का सूर्य डूब गया" एक ने रूंधे कण्ठ से कहा ग्रौर झ्र,रचर्य $-\cdots$ मई की भरी दुपहरी में सूर्य सचमुच ही डूब गया था शायद वह भी शोक विह्बल हो बादलों की श्रोट में हो गया था। ।- ग्रन्घकार घना होता जा रहा था" इस मनहूस वातावराए में भर्त्तनाद बढ़ता ही जा रहा था ! ग्रासमान भी जो --- शायद ग्रधाह वेदना को श्रब तक रोके पड़ा था "ग्रसहनीय दु:ब से वह भी उमड़ पद़ा
 भीड़ को चीरता हुग्रा चल पड़ा त्ञात्तान मूलि की श्रोर ${ }^{-\cdots}$

ग्रवसाद से परिपूर्यां सारा जनसमूह उसका ग्रनुकरा कर रहा था । क्षरा भर में सब राजपथ परथे ! तीन मूर्ति की ग्रोर लोगों की भीड़, साइकलों, बसों ग्रौर भ्रन्य परिवहृनों की सहायता से बढ़ी जा रही थी- एक कोलाहल लिए, एक खलबली लिए-। दिन में शाँति थी मौत की सी भयंकरता सब ग्योर छाई हुई थी

ग्रश्र पूरां नेत्रों से परिपूर्गा, अप.र जनसमुश्रय की श्राँखें एक दूसरे की ग्रोर ग्रज्ञात ग्रारंका से देल रही थीं --न्न शाक ग्रौर टौस बढ़ती जा रही थीयुवक रमेश के लिये घर रहना कसम्भव्व सा हो गया था ! उसके कदम मी तीन मूनि की ग्रोर बढ़ चुके थे। नेहत्रू जी के विशाल भवन के सन्मुख दु:दी़ लोगों की उस्तुक ग्राँखें बन्द दरवाजे की ग्रोर थींपहरे पर तंनात पुलिस ग्रफक्सर से उस युवक ने शंदर जाने की ग्राज्ञा चाही अफकर कर्तंव्य बद्ध था- दु:ख में उसने ग्रचानक गगन मेदी पुकार की, "चन्वा नेहरू जिन्दाबाद "...." घ्रौर श्राइचर्यं-स्ल सभी ने देखा उसने ग्रपना सिर वहाँ के बन्द दरवाजे से मार दिय।"- माथा फग गया"सिर से चूता हुग्रा लाल रवत, रकितम ग्राभा से, फर्गा पर उसकी प्रशांसा की गाथा लिखने लगा-

## THE MAN WITH A ROSE

Shri V. N. Khanna

Jawaharlal Nehru, in the words of President Ra3hakrishnan, was "......one of the greatest figures of our generation, an outstanding statesman whose services to the cause of human freedom are unforgettable." He was not only the Prime Minister of India but much more that thit. He was a hero for the teeming millions of this country, leader of the people, of the biggest pslitical party in India and of the Parliament. Hz wa; friend, philospher and guide of his colleagues and 'Uncle' of millions of young children in this country. He led the people of this country for nearly two decades without any serious challenge to his authority-and yet be was not a dictator He wis a perfect democrat. If he wanted to become a dictator he could have very easily become one. But he was not prepared even to suggest whom he would like to succeed him as leader of the Congress Party and this as Prime Minister. The smooth and democratic election of Shri Lal Bahadur Shastri as leader of the Congress Party and formation of the new government under his leadership is mainly due to the democratic traditions established by the departed leader

Jawaharlal Nehru was India and India was Jawaharlal. So much so that when he passed away on that unfortun.te day of May 27. 19:4, we could not believe it. We had denied him the
right to die but he worked himself to death. Nothing was dearer to his heart than the interest of India and the welfare of the people of this land. In spite of his age and failing bealth he was not prepared to admit that he was old and that he was going to die so soon. When he actually died and his body lay in state at his residence at Teen Murti Marg lakhs of Indian people turned up to see for themselves how could this beloved young man of 75 die Even at midnight (May-27-28) there were mile long queues of weeping and sobbing. men and women-young and old and children, of course--waiting patiently to pay their last homage to the man who had so nicely quided their destinies for seventeen long years.. Some people felt, as Vice-President Zakir Hussain observed while paying homage to Shri Nehru, that their brother had passed away, some felt that they had lost their son, sonie had lost in him their uncle and many were missing their beloved.

Prime Minister Nehru always remained accessible to people, especially to peasants and children Even during the early days of the Chinese aggression on India he found time to address the Staff and students of the University of Delhi. He said that at one time he thought of cancelling the engagement, but he did not do so because he thougnt that by going to the University he


THE NAGA LOOK.

C curtesy : The Illustrated Weekly of india, Bombay.
"What appealed to me about all the(se) tribal people was not only their physique and health but that the men and women alike looked one in the face and were not afraid or inhibited. Altogether, they struck me as a fine lot of which any country can be proud .....Perhaps, I felt happy with these simple folk because the nomad in me found congenial soil in their company. They are a great deal more democratie than most others in India... (They are a people who) sing and dance and try to enjoy life, not people who sit in stock exchanges, shout at each other and think themselves civilized .. We may well succeed in uprooting them from their way of life with its standards and discipline and give them nothing in its place. We may make them feel ashamed of themselves and their own people and thus they may become thoroughly frustrated and unhappy.......'n our well-meant efforts to improve them, we (must therefore be careful that we) do not do them grievous injury......... 1 am not at all sure which is the better way of living, the tribal or our own. In some respects I am quite certain theirs is better."

Jawaharlal Nehru
-roen get a chance to meet the young swien:s and that he would get seersth and courage from them. This ב:ai:er of detatchment was always Ein:red by his friends and critics alike. Ar one time you would find him dealing with a complicated international situasien and a few minutes later he mould be discussing the problem of :buasands of refugees. After sometime sou could find him mixing up with children or laying a foundation stone. Sucb was the man who governed this country for nearly two decades.

Any problem, howsoever small or msignificant, put before him always Eot his attention. Normally he worked tor eighteen hours a day and yet he was always fresh. He could not become a ruthless administrator because he did not ration his time as Prime Minister. He could have easily done that but in that case, "he would not be the man that the country knows and loves" ${ }^{1}$
"After Nehru what" which was on everybody's lips was a magnificent tribute to Nehru's incomparable role in India's political framework. Shri E. M S Namboodiripad, who was dismissed by Nehru's sovernment as Chief Minister of Kerala, writing a few months after his dismissal refused to agree with the view that Nehru's government was an astonishing failure. Creation of what came to be known as the 'Bandung Spirit', the lead given by him in formulating the Five-Year Plans, his emphasis on secularism, and
his forthright denunciation of obscurantism and superstition were of great importance "to a country which is intent on developing itself on modern, democratic lines." ${ }^{2}$

Gandhiji, the political Guru of Nehru. said about the younger leader that the youth of the country had every reason to be proud of their representative. "He is fearless yet gentle ; being a stranger to weakness and weakening diffidence,......... having no diplomacy about him, hates diplomatic language and insists upon going straight to the point." ....." "He is too noble to say anything to please anybody, if he does not believe in it."

This man who hated diplomatic language held the office of External Affairs Minister for seventeen years. The role that India has played in' world politics under his leadership, was the only passible one she could have played, consistent with her own security and world peace. Referring to the foreign policy that Shri Nehıu followed, Shri M. C. Chagla says, - India's foreign policy is the extension into external affairs of her traditions, history and philosophy." Nehru's greatest contribution is his doctrine of co-existence and non-alignment. He did not want India to become a neutralized country like Switzerland. He wanted and tried for non-alignment with the power blocks, If a country joins one or the other power block she looses her real independence.

[^0]She can not think independently nor she can act freely. India always made her humble contribution to World affairs both in the United Nations and outside. His was a gentle and dignified approach even in the international sphere-a Gandhian techinque. Referring to Pakistan Shri Chagla says that with her leaders indulging in bellicose propaganda and rattling the sabre, with perpetual bordet incidents, with unarmed planes being shot down, with the temper of the Indian people rising, "Nehru has gone on preaching restraint and patience in dealings with Pakistan."

He was deeply distressed on what happened in Tibet. Despite the storm that broke out in India, he pleaded for resraint, for "strong condemnation and diatribes are futile unless they can be backed by action." (Chagla) What did the western powers achieve in Hungary by all the strong language that they used against Russia?

Nehru never liked the idea of military pacts and alliances. By being uncommitted a nation creates a climate of peace in the Word. He is sometimes criticised for his policy of non-alignment. A clear study of India's position reveals that there never was and shall never be any other course. With Pakistan as an unfriendly neiglibour and China as an expansionist power on our northern borders it was not posible for us to join either the American block or the Russian. If we were in the western camp how could we expect Russia not to support China in any conflict between India and China. Similarly, if
we joined the Soviet block it was obvious that in the event of Chinese aggression it would not have been possible for the United States to give us any military assistance when her ally, Pakistan, was insisting not to give any help to India. By following the policy of non-alignment we have bren able to get the U.S. help when China invaded us and we have also been able to get the Soviet veto against Pakistan in the Security Council. If we were in the American camp probably there would not bave been the rift between two of the biggest communist countries in the World.

His policy regarding recognition of China and her admissicn to the United Nations was the only realistic approach. Yuu may or may not agree with the policies of that country but you just can not keep $1 / 5 \mathrm{cf}$ the total population of the World outside the pale of the United Nations. Fe was a child of revolutionary nationaism in India. He, therefore, moulded his foreign policy so as to give whatever support he could legitimately give to the countries in Asia and Africa which were seeking to get rid of colcnial yoke. Shri M C. Chagla wrote about Prime Minister Nebru a few years before his death that, "It is a tribute to the statesmanship of the Prime Minister that an uncommitted India is internationally more respected than if she had been a camp follower of one or the other grcup. No fcreign Minister in the World today commands greater respect than India's Prime Minister who has held the portfolio of External Affairs with such distinction since India became free."

His foreign policy was supported ereaty some of his otherwise strong ci:ies. Prof Hiren Mukerji says that, -Ny one in India will grudge IEsanarlal Nehru the honour of Eaving directed the Country's external affuirs since independence in a manner that has earned the World's respect."

Lord Bertrand Russell once said Ejour him that, "All friends of peace and bumane ways of life should join :a congratulating Nehru on his achievements. Few lives can show an equil record of success in the pursuit c: : yportant good causes to which, at Ean5 times, the opposition seemed sasuperable."

One of the many decisions that he twok in respect of India's constitution was our membership of the Commonwealth as a Republic. Till 1949 the British Commonwealth of Nations consisted of the dominions besides the United Kingdom. Dominions recognise the King as their monarch also. The Indian National Congress had decided as far back as 1930 that complete independence was the goal of Indians. When Mr. Nebru proposed that India should continue to be a member of the Commonwealth even as a Republic, with our own elected President and without recognising the King as our monarch, it was thought that other members of the Commonwealth would not accept this position. But when Nehru made this proposal in the Prime Ministers' Conference in 1949. after having secured approval of Prime Minister Attlee and Lord Mountbatten, it was unanimously accepted and the structure of the

Commonwealth was once again charged. Republican India became a member of an organization which had a King as its bead. To many Indians settled in different parts of the Commonwealih, our association with it was very welcome. Nehru told the Constituent Assembly that, "We join the Commonwealth obviously because we think it is beneficial to us

The other countries of the Commonwealth want us to remain because they think it is beneficial to them..........In the World today, where there are so many disruptive forces at work, where we are of ten on the verge of war, $I$ think it is not a safe thing to encourage the breaking up of any association that one has."

Jawaharlal Nehru could not understand how one Indian could kill another. Secularism was a creed for him. He was a socialist but fat from being a communist. He liked many qualities of the western culture yet he was a perfect Indian. He was an able administrator whose subordinates admired nim and whose colleagues adored him. He had his limitations. Some of his friends and colleagues let him down. Some of them brought him bad name by inefficiency or indulging in corrupticn. But nobody ever douhted his integrity or character. As minister of External Affairs his notings and orders on files were always full of instructions, policy and guidance. He did not like some of the outdated customs and conventions yet he never said anything to the commen man which would hurt him. He wanted everything to be perfect and clean. He could loose his temper
very soon. He could not allow flatterets to come near him. He would not allow an umbrella over his head if thousands of his countrymen were listening to him patiently in heavy downpour or in scorching sun.

President Tito of Yugoslavia said about him that India could be proud of such an outstanding leader, who, "through his efforts and farsightedness, is paving the way towards a berter future for India and....................who has become one of the most outstanding statesmen of the contemporary World." Referring to the noble life of Jawaharlal Nehru President Nasser says. "In its depth, it has reached the limit where he has been ahle, through the residue of centuries and the vicissitudes of history, to touch upon the very soul of India."

President Johnson of the United States was expressing the sentiments of all those had known him and had loved him when he said on his death that, "......it is not just as a leader of India that he has served humanity. Perhaps more than any other World leader, he has given expression to man's yearning for peace." This man of peace had to see in his life time aggression committed on his own country by a neighbour whom Nehru, had always regarded as friend. This was not only an attack on his beloved country but
an attack on the principles on which his entire policy was based ; it was an attack on his health and ultimately became responsible for his untimely death. Nehru, who in January 1962 was very young and energetic had suddenly become an old man two months after the betrayal of trust by China.

Nehru is dead but Nehruism shall always live.
'We mourn him. We shall always mourn him because we are human and cannot forget our beloved leader. But I know he would not like us to mourn him, for, in his own words, that is a poor way of doing homage. The only way in which we can pay our tribute to him is to express our determination, to pledge ourselves anew, to dedicate ourselves to the great task which he undertook and which he accomplished to such a large extent...... We loved and respected him and. we s!all always cherish his memoty and revere and uphold the ideals he stood for." Who will not agree with these sentiments expressed by Speaker Hukam Singh in the Sabha on May 29, 1964, while paying tributes to the departed leader of the people?

A Rose has fallen but the rose shall always bloom.
"India is not a communal state but a democratic state in which every citizen has equal rights."
"i am not a religious man, dogmas do not appeal to me; nor am I really interested in the after-life and all that. Why should I worry myself? The problems of the day are enough for me and I do not care what happens to me or to my reputation once I am dead. When 1 am dead, what does it matter to me? What does matter to me is that things ! have worked for should prosper and the country should continue in the same direction, or in some better way if that is devised later."

Jowoharlal Nehru


The Devotee of Letters

Courtesy: The Illustrated Weekly of India, Bombay.

# Shri Jawaharlal Nehru : 

The Man in His Writings

Shri Radha Krishna Sud

'It is odd how the success of a book ctimately depends on certain immaterial cai insubstantial factors which one cannot axs.:5 measure. Good writing and presenta-$=-m$ are of course important, the content is E-5 more important, but over and above :Se comes a certain sincerity in writing, zimbined with restraint, which colours a book and makes at liked."
(Nehru's Letters to his Sister, No. 53,

Shri Jawaharlal Nehru was not a man but an institution. He had been variously called: 'The man of Destiny' Gandhiji's great heir. 'Indian Hamlet, 'Great Humanist', and the 'Personification of our hopes.' He was all these and much more besides. He was a speaker and a writer. He was a speaker by necessity and a writer by choice and, if I may add, an historian by the accident of his birth in the present age.

It is difficult to separate the man from the writer, the politician from the humanist, the orator from the thinker; for Pundit Nehru was all these in one and the same breath. The politician, the historian, the thinker and the writer were different facets of the man Jawaharlal as are the facets of a cut-diamond. They revealed a mind, mature and wellcultivated with the best that has been said and written in the past and the present; a mind that instictively accepted all that was essentially noble in human nature, beautiful and elevating and rejected all that was base, tainted and corrupting. His was a mind broad enough to embrace the whole of creation as the next of kin; a mind which delighted in doing good and shunning evil in word, thought and action; a mind which approached baffling problems with sympathetic understanding; -- in short, a mind that atonce illuminated and fascinated other minds.
[In November, 1959, the College Union asked me to speak on Shri dawaharlal Nehru: The Man of Letters. What I said was later printed in the Desh, Vol. VIII Nos. 3-4, 1959. Little did anyone of us know
that he would be taken away from us so soon by jealous Fate and all that would be left of him would be his books which bear the indelible imprint of his personality and which enshrine his immortal soul. Rightly did

## Speeches

Every word that Mr. Nehru uttered or every line that he wrote was an index to his personality. His writings and his speeches bear the impress of his sincerity, integrity and high purposiveness. His speeches we probably took as routine performances. We got the best of him in his formal addresses and discourses. We are guilty of the former attitude because of our ignorance. Little do we know how much time and thinking go to the making of a good speech. Mr. Nehru spoke on all subjects; metaphorically speaking, from cabbages to kings. As you go through the printed volumes of his selected speeches you are simply wonderstruck at the amplitude or the range of subjects covered by them. His versatility is on a par with his eloquence. His historical sense, 'disarming candour and spotaneous

Milton remark: "A good hook is the precious life-blood of a master-spirit imbalmed and treasured up on purpose to a life beyond life. "Addison reaffirmed what Milton had said :" "Books are the legacies that a great genius leaves to mankind, which are delivered down from generation to generation, as presents to the posterity of those who are yet unborn." On that occasion, his 70 梀 birthday, I said: "Every word that Mr. Nehru utters or every line that he writes is an index to his personality. His writings and his speeches bear the impress of his sincerity, integrity and high purposiveness" This estimate of Shri Nehru, the writer, falls in line with the standard of excellence of
sincerity have invested these speeches with a lasting significance. We read them again and again for their inspiring sentiments and insistence upon moral values as much as for their beauty of style and expression. So great is the spell of his ardour on us that we cannot help resolving within our minds to dedicate our hearts and souls to the service of India. This is, in effect, the charm of Mr. Nehru, the man and the writer. He has a message for today and tomorrow :-
"This generation is sentenced to hard labour; for years to come toil and tears are to be the portion of India before she can complete the noble mansion of her greatness .. There is a hope and a promise so long as the people of India do not forget what the Master, Mahatma Gandhi, has taught
literary writing by which Shri Nehru judged books and writings he read-and he read quite a lot-and the standard by which he would have liked himself to be judged. Unwittiagly he laid it down in a letter to his sister, Mrs. Krishna Hutheesingh, with which the present article is prefaced.

Pages 23 to 29 (first column) of the present article are abridged from my earlier article. In many places the present tense has been changed into past tense. This was unavoidable. The title, too, has been changed as the emphasis is on the man, that was Jawaharlal Nehru, and his ideals, which constitute the contents of his writings.]
them; as long as they relate ends to means, this nation is bound to come into its own and take its proper place in the comity of nations."

He reminded us of our goal and the means thereto in his speech which he delivered in the Constituent Assembiy on August 14th, 1947, entitled A Tryst with Destiny:
"... the service of India means the service of the millions who suffer. It means the ending of poverty and ignorance and disease and inequality of opportunity. The ambition of the greatest man of our generation has been to wipe every tear from every eye. That may be beyond us, but as long as there ate tears and suffering so long our work will not be over ...... These dreams are for India, but they are also for the world ..... Peace has been said to be indivisible; so is freedom, so is prosperity now, and so is disaster in this One World that can no longer be split into isolated fragments...."

Truly, to the large-hearted the whole world is their family. He highlighted the means to the above end, in his speech on the All India Radio on January 30, 1948, the day Mahatma Gandhi died, in memorable words :
"The light has gone out, and yet I was wrong. For the light that shone in this country was no ordinary light......a thousand
years later, that light will still be seen in this country and the world will see it and it will give solace to innumerable hearts. For that light represented something more than the immediate present, it represented the living, the eternal truths, reminding us of the right path, drawing us from error, taking this ancient country to freedom.........."
....Little did he know that the nation would say the same about him when he would be no more in their midst. Large heartedness and correlation of means to ends are the age-old virtues of our country and they are emphasized by Mr. Nehru in his speeches.

## Addresses and Discourses

If Mr. Nehru's speeches are inspiring, his addresses and discourses are educative: a treat for the intellectuals and a feast of thought for their minds. Some of them have been printed in his books called The Unity of India. India and the World and in the three volumes of his speeches, published by The Publication Division of the Government of India. They are marked by a masterly grasp of facts, figures and situation and these are marshalled with full command of argument, cross-argument, re-inforced by firmness of faith, clarity of expression and lucidity of interpretation. He holds his listeners spell-bound and by the time he ends his address they think with him. To illustrate my point I draw your attention to his Azad Memorial

Lectures (1959) delivered in the Vigyan Bhawan in February, 1959. As you pass on from page to page of the printed lectures, entitled India Today and Tomorrow, you see before your mind's eyes the past, the present and the future of India and of the Western world opening themselves in their es ential features : laying bare, as it were, their achieve-ments:--the advancement of modern science and technology and their benefits to humanity placed side by side with the horrors of war and the devastation consequent upon their misuse and the blessings of eternal values consecrated in books of religion and ethics. Which shall we choose? asks Mr. Nehru. Plenty of material comforts or the peace of the soul? His reply is that we must integrate both. He writes :-
"..India will progress industrially and otherwise ; she will advance in science and technology; .....our peoples' standards will rise, ..........But what I am concerned with is not merely our material progress, but the quality and depth of our people. Gaining power through industrial processes, will they lose themselves in the quest of individual wealth and soft living ? That would be a tragedy for that would be a negation of what India has stood for in the past and, I think, in the present time also as exemplified by Gandhi......"

He concluded with axiomatic words :-
"Power is necessary, but Wisdom is essential. It is only power with wisdom that is good... .."

These words of Mr. Nehru remind us of the saying in the Bible:"What is a man profited, if he shall gain the whole world, and lose his own soul." During the period of our slavery we did not lose our country's soul ; let us not lose it in the twilight of our freedom. This is, to my mind, the message of Mr. Nehru in his latest address.

## Letters from a Father to his Daughter

His small book, Letters from a Father to his Daughter, was addresed to his daughter, Indira, so that she, and the readers who were to read it after its publication, would "gradually begin to think of this world of ours as a large family of nations." These letters are delightful to read. Their style has the lucidity of the style of the Biblical parables or of the wellknown childrens' classics. With the approach of a scientist, that is, the objective outlook, the vision of an historian and the gift of style of a writer, Mr. Nehru teaches the evolution of life and in a gripping manner drives the lesson home. It is Natural Science Made Easy. With equal ease and felicity of style Mr. Nehru explained to his daughter a terse proposition. "What is civilization ?" He answered:-
"Fine buildings, fine pictures and books and everything that
is beautiful are certainly signs a civilization, But an even b:ger sign is a fine man who is unselfish and works with others tor the good of all. To work together is better than to work singly, and to work together for the common good is the best of ail."
Mr. Nehru's book: The Glimpses of $W_{\text {orld }}$ History is a continuation of taese letters.

## Autobiography

Mr. Nehru's magnum opus is, of course, his Autobiography. It was -written in the long solitudes of gaol lite in a mood of self-questing to review the past events in India and to think clearly about them and to trace his own mental development.' The Autobiography, thus, is a double record: historical and spiritual. In other words, it displays the shaping of the Man of Destiny by the great events, nothing short of the travail which was to throw up a Free India, and the impact of Mr. Nehru on those events. History, it is said, is the essence of innumerable biographies of great men. The history of modern India is really the history of her great men and women amongst whom Mr. Nehru stands the foremost amidst his equally revered compeers Some of these appear in the pages of the Autobiography and are treated by Mr. Nehru with the consideration and respect which they deserve. For example, Mahatma Gandhi, Pt. Moti Lal Nehru and Mr. Sastri and many others are sketched with the skill and grip of a portrait-painter ard
the essence of their personalities- that is, the subject in the man-brought home to us. He discusses his colleagues frankly and sometimes criticizes them severely but always with respect and without malice or acrimony. He believes that those who meddle in public affairs must be frank with each other and with the public they claim to serve.' Here once again we meet the gentleman turned historian who believes that moral values and appropriate conduct are as much necessaty in public life as in personal life. We may call the Autobiugraphy Mr. Nehru's Experiments with Politics and Politicians, His understanding of human material is as astute and thorough as of facts and figures or of problems and theories. He has no truck with charlatans or the narrow-minded, the cowardly or the facing-bothways, whether they call themselves Liberals or Moderates or whether they are avowedly Communalists. They are for him not so many enigmas but obstructions to be cleard off the path of freedom and progress. They are the stumbling blocks who, in their selfish interests, retard the nation's future and readily play into the hands of the ruling power like puppets. Mr. Nehru refused to be sucked into the vortex of swirling antinational activities or to be cowed down by raging reactionaries, nochangers and die-hards. That is his greatness and you come to know of it first hand in the Autobiography.

If the period covered by Mr. Nehru's life featured great personalities, it also featured great issues; for
example, the role of Non-violence in the attainment of political freedom or the place of Religion in Politics. Notwithstanding his great admiration for Gandhiji his consideration of the Gandhian methods and beliefs was fairly objective. He was hesitant and sceptical in the beginning but once he espoused them he allowed them full and unrestricted play.

The Autobiography also reveals the more human side of Mr. Nehru's personality : his, fine sensibilities and his sense of humour and also of sarcasm. Scatteted throughout the pases of the book are passages of great beauty in which you meet Mr. Nehru the artist in words, pure and simple; the man who loved the grandeur and peace of the hills, the loveliness of flowers and the endearing vagaries of animals, birds and insects. If his love for his poor and down-trodden countrymen and countrywomen fed the fire in his mind, his sense of beauty and virtue provided the no-less-needed balm to his heart which otherwise might bave languished in grief, sorrow or despair. Like any one of us Mr. Nehru has had his share of sorrow and grief but, thanks to his brave spirit, and unshaken faith in his own destiny and the sacred cause of the nation's freedom and prosperity he endured them with smiles--the same smiles with which he was to greet fame, happiness and responsibility later. This poise and balance of temper in the face of ups and downs of life was so very characteristic of Mr. Nehru. The death of his father, the illness and the death of his wife, the separa-
tion from his kith and kin, the ever-recurring imprisonments, the anguish of his soul at the sight of untold miseries of the people of India, the disgust with the tardiness of pace at which the nation moved and so on and so forth-all these he had to put up with and he did that with good cheer. The Autobiography thus regarded, is a great human document; indeed, a spiritual book that emboldens the readers to action and inspires them to self-realization and self-fulfilment.

## The Discovery of India

It is for historians to assess the value of Mr. Nehru as an historian. His books: Soviet Russia. The Glimpses of World History and The Liscovery of India are well-known to the readers. There are many passages scattered throughout the pages of these books wherein you find the impress of Mr . Nehru, the man of humanistic vision joining hands with Mr. Nehru, the artist in words. The historian may read them to get peeps into the not-too-distant and the distant past of India and the world. I prefer to read them as the records of a sensitive mind that tries, honestly and assiduously, to understand his country's past and the dawn of a new era in world history; the rise of the Red Star. Plan for plenty, he says, but not at the cost of moral values, human dignity and freedom of the individual. That is the writing on the wall that Mr. Nehru, the historian, reads in the pages of world history. The opening chapter of The Discovery of India contains a re-statement of Mr. Nehru's philoso-
pity or life and faith :
-_How amazing is the spirit of man! In spite of innumerab:e failings, man, throughout the ages, has sacrificed his life and all he held dear for an ideal, for truth, for country and honour. That ideal may change but the capacity for selfsacrifice continues, and because of that, much may be forgiven to man, and it is impossible to lose hope for man. In the midst of disaster he has not lost his dignity or his faith in the values he cherished... The future is dark, uncertain. But we can see part of the way leading to it and tread it with firm steps, remembering that nothing that can happen is likely to overcome the spirit of man which has survived so many perils. Remembering also that life, for all its ills, has joy and beauty, and we can wander, if we know to, in the enchanted woods of nature.
"What else is wisdom? What of man's endeavour
Or God's high grace, so lovely and so great?
To stand from fear set free, to breathe and wait;
To hold a hand uplifted over Hate;
And shall not Loveliness be loved for ever ?"

Great words, no doubt; they contain the essence of history, philosophy
and literature. Mr. Nehru himself was a fine embodiment of the Eternal Spirit in Man and his writings are records and revelations of that Spirit.

## Nehru's Letters to his Sister

'The true art of letter-writing', wrote Jane Austen, 'is to express on paper exactly what one would say to the same person by wotd of mouth.' Letters to friends and near relatives are always in the nature of unpremeditated art: they take us nearest and deepest into the recesses of the writer's heart, mind and soul. This is very much true of Shri Nehru's letters to his younger sister, Mrs. Krishna Hutheesingh, which have been published under the title: Nehru's Letters to his Sister. These letters are very delightful to read and not a few of them are instructive and inspiring too. They introduce us to Jawabarlal, the man; of course, in his role of an elder brother and the head of an illustrious family 'whose lives have become part of the larger life of the nation.' Writing these letters was not only a brotherly duty but it provided him a sort of relief from broodings in the prison. He wrote:
"To retire into one's shell is a good thing, for some at least. So many odd things turn up and, in spite of all efforts to detach oneself life has so many holds that something had to be done about them. So I suppose I shall write once a fortnight, either to you or to someone else."

As you read letter after letter you come to know how sincere and affectionate he was in his messages of greetings, good wishes and sympathies; how respectful of his equally gifted and honoured father and how proud of having inherited from him the qualities of 'strength and courage' to face the 'trials and difficulties', that may come in his way,' with resolution and with the determination to overcome them' without getting 'swelled head.' He was a great rraditionalist in observing the festivals of Rakhi and Bhaiya Dooj (and many others) with the zest of children. About Raksha Bandhan he writes:'

Ruksha Bandhan is one of our pleasing festivals which brings not only personal but also historical memories. It is symbolic of so much."

He was always asking for books and more books-books of all types, ranging from Kalidas's Shakuntla and Meghaduta, Bana Bhatta's Kadambri, Garibaldi's Life, Sylvain Levi's Le Theatre Indien and books by Lewis Carrol, Pearl Buck and Euripides. He was a good judge of books and told his sister frankly what he thought of her book: With No Regrets. Young as she was the best birthday gift that he could think for her-though belated due to his arrest-was the gift of books. What a wonderful piece of advice to our young readers who waste too much of their time in chasing film-stars and crooning lovelorn tunes, knowing not what tremendous wealth of imagination and thought they miss. His advice to his
sister was:-
"....take yourself to a book shop and choose some volumes containing the wisdom of the ancients, and the faith of the middle ages, and the scepticism of the present, and glimpses of the glory that is to be and take them and pay for them and consider them the belated but loving gift of a somewhat absent-minded brothet who thinks often of his little sister. And read these chosen volumes and out of them construct a magic city full of dream castles and flowering gardens and running brooks where beauty and happiness dwell and ills that this sorry world of ours suffers from can gain ro admittance. And life will then become one long and happy endeavour, a ceaseless adventure, to build this magic city and to drive away all the ugliness and misery around us."

It is a passage which a poet alone could have written In it we find the same thrill as ripples in Keats' wellknown sonnet: 'On First Looking Into Chapman's Homer' with its opening line: 'Much have I travell'd in the realms of gold , working its spell on our hearts and minds.

Dreams have their own place in youthful life. But they are not all. Life is action and 'all action is a challenge.' Shri Nehru was very emphatic, persistent and unambiguous, ahout the necessity and urgency of leading life
rixb an aim and a purpose and with tize proper perspective. Although tiree and again he disclaimed the castiv of a philosopher, excepting in a seperficial and casual manner, what $\pm 2$ :old his sister about 'Life and How © Face It' contained the warp and woof of his philosophy of life. He wrote ;
"The feeling has grown in me that life for all its vagaries offers us ultimately what we seek from it, or rather what we are capable of receiving from its inexhaustible storehouse. In a sense it mirrors our capacity and our temperaments. If our interests are sufficiently varied we can find in it all the variety we can appreciate and absorb. If we live in a narrow shell, life for us assumes that shape and context. It can be superficial or deep as we choose to see it and sense it; it can be full of adventure or dull and conventional and narrow in scope, fitting in with our own mental horizon. Life ultimately is a series ot mental perceptions and sensations; it enters and fills us to the extent we have open windows to our minds and spitits. External factors, which we cannot control, affect it of course greatly, but there is always this possibility of rising above them and not allowing them to suppress us; and indeed of making them the means of giving us further insight and experience of life :"

Shri Nehru might be a traditionalist in matters relating to culture, but in the realm of practical affairs he was a modern scientist and historian. To make a success of yourself you must acquire the proper perspective. He defined it thus:-

> 'To lose our perspective in life is to lose our bearings. To look back is necessarily to look away from the present and the future which count. We must face the everchanging present and have the power of quick decisions. Decide this way or that after weighing the pros and cons and act up to the decision. Not to decide is to live in a fog of doubt, and misgiving. Whether it is a matter relating to the narrow sphere of the family or the large sphere of life, one must solve and resolve our problems as they arise and go ahead, not regretting over much or pining for what is not, not complaining, not holding others responsible for something that might have been otherwise."

Sound words of advice and encouragement to the youth who admire Chacha Nehru, miss him and despairing ask: 'What after Nehru ?'. Emulate him and imbibe the best of his life and writings. That will be the right way to cherish his hallowed memory. To repeat what Shri Nehru quoted from George Bernard Shaw's play: Man and Superman:
"This is the true joy in life, the
being used for a purpose recognized by yourself as a mighty one; the being thoroughly worn out before you are thrown on the scrap heap; the being a force of Nature instead of a feverish selfish little clod of ailments and grievances complaining that the world will not devote itself to making you happy."

That was his credo and literally he lived up to it. Not only his life and much of that he had but also his thoughts were his country's. He espoused the cause of his country's freedom, the prosperity of its masses, the dignity of man the world over and of world peace and not for a moment did he falter or rest. What he achieved he left as a legacy for all of us. What he has left undone offers us a challenge and opportunity. Shall we fulfil his hopes and dreams of a free and happy India and of a world living in unshattered peace? In our answer will lie the proof of our worthiness to be called the followers of Nehru, or for the matter of that, of Gandhi and of the Buddha. These few letters, thus read and regarded, are the real Preface to Shri Nehru, the Man and the Hero; the individual and the citizen of the world-the glorious link in the destiny of India and of the world.

## The Extracts from his Will

Extracts from Shri Nehru's will, that were broadcast and published a few days after his death, were the Finale of the Symphony that was Jawaharlal Nehru, sounding toge-
ther, as it does, all the chords which vibrated within him. What did he love the most? His answer was: India, the Land and the People. What did he remember the most? His answer was: his colleagues with whom he had fought in the struggle for freedom. What did he cherish the most? His answer was: the unbounded and overwhelming affection of the people of India. He wrote :

> "I have received so much love and affection from Indian people that nothing that I can do can repay even a small fraction of it, and indeed there can be no repayment of so precious a thing as affection. Many have been admired, some have been revered, but the affection of all classes of the Indian people has come to me in such abundant measure that I have been overwhelmed by it. I can only express the hope that in the remaining years I may live, I shall not be unworthy of my people and their affection."

Power and riches he did not covet. If, then, he served his people it was because he loved them and their cause was his cause. Could our political leaders take a cue from Shri Nehru!

He did not just love his country; he was proud of her. His attachment was not only intellectual but also sentimental. India is an ancient land, hallowed by a history and traditions, possessed of a distinctive culture, rich in physical beauty and linked by ever-changing stresses of

Dextiny. He was a link in the chain, mice in all humility said, like any one ox $x$. Of this chain the Ganges-the River of India-is a symbol. A part of his ashes, he desired to be consigned to her waters so that the same mighe be carried away to the sea which washes India's shores. These enriched 'rares would wash the Indian oceans till eternity.' The remaining ashes were to be scattered from a plane flring very high over the fields of India, where the masses toil and sweat for nation's food and strength, 'so that tier might mingle with the dust of India and become an indistinguishable part of India'. Jawaharlal's ashes must be for ever India's and India! No closer and more abiding ties than this could ever bind a country and her sons together.

Apart from the fine sentiments contained in the Extracts there is a passage of sheer literary value-a piece of felicitous description in very simple words, chaste though not ornate, but none the less invigorating. It is full of the same heartening cadence as we feel when we sing verses from Tirana-i-Hind by Iqbal:-

पर्षत वोह सवसे ऊँचा हमसाया ग्रासमाँ कावोह्ह संतरी हमारा, वोही पासवां हमारा । गोदी में खेलती हैं, उसकी हज़ारों नदीयांगुल खान है जिन के दम से रशके जहां हमारा।।

This passage contains his deep adoration of the Ganges. He wrote :
"She reminds me of the snowcovered peaks and the deep valleys of the Himalayas, which

I have loved so much, and of the rich and vast plains below, where my life and work have been cast. Smiling and dancing in the morning sunlight, and dark and gloomy and full of mystery as the evening shadows fall; a narrow, slow and graceful stream in winter, and a vast roaring thing during the monsoon, broad bosomed almost as the sea, and with something of the sea's power to destroy the Ganga has been to me a symbol and a memory of the past of India, running into the present, and flowing on to the great ocean of the future."

Shri Nehru's love of India thus symbolized his love of and identification with the past. the present and the future of India.

The Extract is a magnificant document, 'worth in gold'. 'It contains ennobling and inspiring thoughts of burning patriotism'. Will Shri Nehru's countrymen weigh and consider them! If they do, there can be a hope that they may follow suit.

## Postscript

Our loss is great, indeed! But we must not despair. To quote Shri Nehru:-
"Every death upsets the equilibrium not only of various individuals but of the group or family and friends. There is a gap. The gap remains and yet nature establishes a new equilibrium."

To despair, will be tantamount to distrusting Shri Nehru. His soul will always guide us like the Pole-star. He will always be with us in spirit. In the words of the poet, we should ask ourselves the most pertinent question:

ग्राईमा को अ्रमर मानने वाले हम,
कगा हिन्दुस्तान को मर जाने देंगे ?
जदाहर्रलाल चले गए हैं तो क्या हम,
उनकी श्रात्मा को भी गुज़र जाने देंगे ? $\dagger$
Each one of us should be as much conscious of leading a purposeful existence and a life of responsibilities as Shri Nehru was. It was doubly significant that when death loomed in his
face he scribbled on his writing pad the following lines from the American poet, Robert Frost:
"The woods are lovely, dark and deep But I have promises to keep And miles to go before I sleep And miles to go before I sleep."

His promises, to the nation and to the world, should now be out pledges if we are to imbibe his spirit and be a living monument to him. The Spirit in him was greater than the man; it was his own monument. Let us, therefore, live in his spirit for ever and ever more. He will not, then, be dead but live in us.

$$
\begin{aligned}
& \text { if "हिन्दुस्तान ग्रमर है } \ddagger \text { " By Shri Bhawani Prasad Mishra, (Quoted from } \\
& \text { The Saptahik Hindustan, NEW DELHI. }
\end{aligned}
$$

"... I am not a philosopher, except perhaps in a narrow sense, In the sense that every one has to think about the future and about one's life.

I have lived a life which has been one of incessant activity on the one hand and, on the other, past periods of confinement when $/$ could do nothing except to think of the past and of some vague future. In that sense everyone may be said to be a philosopher. But the problems of the world are so intricate and difficult that Ifeel very humble before them. I have no remedy for them except to work on the lines which one beleves to be the right lines. We may not always be able to say what is right. But if we know what is wrong, well, let us avoid it and thereby, perhaps, to avoid some bad consequences.

And so ...we worked in India and we shall continue working till there is any energy left in us. ... In the final analysis one just works. The Gita says, working we must for results, but not to care too much about the results. It really means, to work but not to be so utterly attached to results that they upset one . ..."

# The Captive of Our Love 

Shri S. M. Jhangiani

As I sit down to write a few words of deep gratitude to our dear departed Prime Minister, my thoughts take me beck to the dismal days of the partitien of the country when I and over a inaired thousand of my brethren were uprooted from the land of their forefathers. The cause is too well lmewn to need a repetition. It was the communal holocaust consequent apen the partition in the wake of our rinning the most-cherished and longdeiased freedom. It would have been, indeed, an honour to have laid down cur lives for the good or the glory of the country. But to be butchered and hounded out of our homes in wild rage and lust for wealth, power, land and property-was not thought to be a part of the bargain even by the most desperate among our political leaders. What price liberty! The much-maligned and much-misunderstood refugees; the helpless pawns on the political chessboard; the muchpitied and detested homeless who still need a roof over their heads; the widows and orphans who just dread the memory of their erstwhile happy past-all these know 'what price liberty'!

The darkest cloud, they say, has a silver lining. Very true, indeed! When on all sides of us there was unredeemed gloom, there was a solitary voice broadcasting, as it were, a message of good cheer: 'The whole nation is with you in your sufferings
and will share all that they have with you.' His open arms welcomed us to this side of the rivers Indus, Jehlum, Chenab and Ravi. Ours was an exodus, perhaps unparallelled in human history. This cheering voice was that of Jawaharlal. Whereas Gandhiji chose to exercise his motal and spiritual influence upon the peoples of India and Pakistan to keep their head and behave like human beings; Jawaharlal adopted the practical methods of rendering protection and relief to the migrants. He spared himself no pains and exposed himself to all sorts of dangers in running from one part of the country to the other and thus to all the parts where the distressed needed help.

It is difficult to settle millions of homeless people even when funds and other resources are unlimited. Do not the refugees of the First World War still wander over Europe? It will, therefore be rank ingratitude on the part of the refugees, whether Sindhis or non-Sindhis, to say that the Government of India did nothing to help them in their sorest hour of misery. And it will be doing injustice to the sacred memory of the great leader who was the inspiring head behind all that the Government did. He may have had his faults and shortcomings. Who has not! He was a man of action; honest, sincere and noble. He was, kind-hearted and generous-minded. In the words
of Gandhiji: " He is transparent as crystal. His loyalty and affection are beyond compare....... He has made me the captive of his love.... He is working, slaving for us, not as a king but as our first servant. It is his desire through the service of India to serve the world." The truth is that the captor and the captives are bound in chords of mutual love.

You and I are the captives of his love. Members of the Sindhi community are more so and they have a valid reason. He not only saved' their lives and honour but also their culture, language and literature-indeed, the richest part of the heritage of India's past. But for his broad vision and humanistic outlook India would have lost the richest gem in her heritage. India would, indeed, have gained her freedom but at the cost of her soul. For is not our culture the essence and fragrance of our souls?

Jawaharlal, the jewel of India, the gem of gems he was! He was the champion of freedom, the true disciple of Gandhiji, the advocate of the cause of peace, the builder of non-alignment and the designer of socialistic pattern of society in India. In the death of Shri Jawaharlal Nehru, the country has lost a great son. The Sindhis, in particular, as explained above, have lost a benefactor and a well-wisher. Due to the partition of the country, the Sindhis suffered the most. The Punjabis got the East Punjab and the Bengalis got the West Bengal to settle down but the Sindhis were deprived of their hearths and
homes and becàme Stateless. But they found in Shri Jawaharlal Nehru the man who made them feel that the whole of India was their home. He being the Prime Minister and at the helm of affairs saw that the Sindhis, though scattered all over India like the beads of a torn necklace were, however, settled to the best of the ability and capacity of the Government.

Though shorn of their territory. the Sindhis brought with them the treasure-hold of their cultural heri-tage-the spirit of the Sindhu Valley Civilization, which Shri Nehru held dear to his heart. We are told by him in The Discovery of India that the very name of our country India or Hindustan is derived from river Indus or Sindhu.

Writing about the Sindhi community (The Discovery of India P. 333 1960 edition.) he says, "The Sindhis in the north west have also been an old commercial tradition, and with their headquarters or Shikarpur or Hyderabad, they used to spread out over central and western Asia and else where. Today there is hardly a part where one or more Sindhi shops cannot be found." These words speak for the spirit of enterprise and adventure of the Sindhis.

The cause of the Sindhi language was very dear to Shri Nehru's heart. It is evident from the fact that the Executive Board of the Sahitya Akademi which met on 14th March, 1957, under the Chairmanship of Shri Jawaharlal Nehru, decided that Sindhi
and be recognized as one of the Lers of India for the purpose of Sizisya Akademi's programmes of a-cojinating and fostering literary acrevers in the various languages of Lezin" Hitherto Sindhi was deprived or :es rightful place so much so that Sinini children were, in same States, deased even primary education through are- mother tongue! This decision aí = Sahitya Akademi made it clear to all governments, semi-government iastitutions and non-government bodis to give due weight to Sindhi. A number of representations were mde for inclusion of Sindhi in the Eghith Schedule of the Constitution but Shri Nehru felt that the time was not ripe for it. He, however, assured the Sindhis that Sindhi will get ail facilities which were enjoyed by the orier languagss enumerated in the Eighth Schedule of the Constitution. It is gratifying to mention that 5:ndhi is now taught in all schools and colleges affiliated to various Boards of Secondary Education and Universities; viz, Delhi, Ajmer, Rajasthan, Gwalior and Allahahad Boards of Secondary Education and the Universities of Delhi, Bombay, Gujrat, Calcutta, Punjab, Nagpur and Gauhati. Sindhi is also recognized for National Awards for the best books for children and neo-literates by the Ministry of Education of the Union Government. The A.I.R. Bombay and Jaipur broadcast Sindhi programmes regularly.

Shri Nehru had visited Sind on about three occasions and had gone into the interior also. He was given rousing reception. A number of songs were composed in Sindhi in his
horour praising his courage to fight the British, his love for the country and practising Swadeshi though he was born and brought up in a westernized aristocratic family.

It was a few days before his sudden death that an attempt was made at Bombay (by some school authorities) to remove the word 'Sindh' from the National Anthem and replace it by the word 'Andhra'. The moment the matter was brought to his notice by Shri Jairamdas Daulatram, Shri Nehru immediately wrote back to say that he was taking up the matter with the Chief Minister, Maharashtra Government, who had since expressed his regrets over the incident. Earlier attempts to this effect were also fonled by Shri Nehru. He had held that the word 'Sindh' had no meaning without Sindhis and as Sindhis were settled in India there was no reason why the word 'Sindh' should be removed from the National Anthem.

Shri Nehru had also wielded his influence over the National Book Trust of India and the Central Board of Secondary Education, Delhi, for recognition of Sindhi for their programmes and curricula. He himself, of his own accord, had advocated the cause of Sindhi a: the National Integration Convention. And .....

Bu: alas! His work in this direction remains incomplete. Death snatched him from us when we needed him for many more years. Had he lived, I am sure, he would have restored to the Sindhi language,
literature and culture their rightful place alongside other languages, literatures and cultures in India. The greatness of our counrry is that it has readily and ungrudgingly imbibed the best in so many cultures of the so many peoples who came to her across the portals of time. "The basic objective," said Shri Jawaharlal, "is to build up a free India of high ideals and noble endeavour where there is equality of opportunity for all and where many variegated streams of
thought and culture meet together to form a mighty river of progress and advancement for her people." He was not only conscious of it but also proud of it. We must share his sense of pride in his country's cultural heritage. We must preserve it for ourselves and for the coming generations. If we do that we shall be true to the spirit of our Constitution and to the ideal of Jawaharlal Nehru, our gem of gems.
"We prize the parliamentary form of government because it is a peaceful method of dealing with problems. It is a method of argument, discussion and decision, and of accepting that decision, even though one may not agree with it. However, the minority in a parliamentary government has a very important part to play. Naturally, the majority, by the mere fact that it is a majority, must have its way. But a majority which ignores the minority is not working in the true spirit of parliamentary democracv."
"A nation's foremost duty is to strengthen and preserve its freedom. This is the yardstick to measure every other activity. If we give importance to other things, like our group, our State, our language or our caste, and forget our country, we shall be destroyed. All these have their proper place, but if we place our State, our language, our group, above country, the nation will be destroyed."

Jawaharlal Nehru

# Thy Voice We Love To Hear, Jawahar ! 

## (Quotations from his speeches)

"Oh, there is something in that voice that reaches
The innermost recesses of $m y$ spirit."

Thy voice so sweet, thy words so fair, As some soft chime had stroked the air; And though the sound had departed thence,
Stall left an echo in the sense."
"The price of freedom will have to be paid in full measure, and no Fice is too great for the freedom of our people and of our Motherland."
"Mahatma Gandhi showed us that lhe human spirit is more powerful the mightiest of armaments. He epplied moral values to political action and pointed out that ends and means can never be separated, for the means ultimately govern the end. If the means are evil, then the end itself lecomes distorted and at least partial\% evil."
"I am not wedded to any dogma - religion, but I do believe-whether calls it religion or not-in the mate spirituality of human beings.

I do believe in the innate dignity of the individual. I do believe that every individual should be given equal opportunity. I believe- as an ideal it may be difficult to reach-in an egalitarian society with no great differences: I dislike the vulgarity of the rich as much as the poverty of the poor."
"There is a time for work and there is a time for play, just as there is a time for laughter and there is a time for tears. And today is the time for work in this nation. For, this generation of ours, if I may say so, is condemned to hatd labour.

I want work and work and work. I want achievement. I want men who work as crusaders I want men who are going to fight for what they think is right and not submit humbly to wrong. I want you to do big things. I want you to build up India.

The work of a nation or a country is never completed. It goes on and on and no one can arrest its progressthe progress of a living nation. We have to press forward."
"The biggest temple and mosque and gurdwara is the place where man
works for the good of mankind. Which place can be greater than this, this Bhakra-Nangal where thousands and lakhs of people have worked, have shed their blocd and sweat and laid down their lives as well? Where can be a greater and holier place than this, which we can regard as higher ?"

## (6)

"The only key to the solution of the world's problems and of India's problems lies in socialism, and when I use this word 1 do so not in a vague humanitarian way but in the scientific economic sense. Socialism is, however, something even more than an economic doctrine; it is a philosophy of life and as such also it appeals to me. I see no way of ending the poverty, the vast unemployment, the degradation and the subjection of the Indian people except through socialism."

## (7)

"We talk of freedom, but today political freedom does not take us far unless there is economic freedom. Indeed, there is no such thing as freedom for a man who is starving or for a country which is poor."
( 8 )
"We have laid down in our Constitution that India is a secular State. That does not mean irreligion. It means equal respect for all faiths and equal opportunities for all, irrespective of the faith which they profess. We have, therefore, always to keep in
mind this vital aspect of our culture which is also of the highest importance in the India of today."
(9)
"The main objectives of India's foreign policy are: the pursuit of peace, not through alignment with any major power or group of powers but through an independent approach to each controversial or disputed issue, the liberation of subject peoples, the maintenance of freedom, both national, and individual, the elimination of racial discrimination and the elimination of want, disease and ignorance which afflict the greater part of the world's population. The policy India has sought to pursue is not a negative and neutral policy. It is a positive and a vital policy that flows from our struggle for freedom and from the teachings of Mahatma Gandhi. The objectives of our foreign policy are the preservation of world peace and enlargement of human freedom. India may be new to world politics and her military strength insignificant in comparison with that of the giants of our epoch. But India is old in thought and experience and has travelled through trackless centuries in the adventure of life. Throughout her long history she has stood for peace, and every prayer that an Indian raises ends with an invocation to peace. It was out of this ancient and yet young India that Mahatma Gandhi arose and he taught us a technique of peaceful action...We are neither blind to reality nor do we propose to acquiesce in any challenge to man's freedom from whatever quarter it may come. Where
freedom is menaced or justice threatened or where aggression takes place, we cannot be and shall not be neutral."
"All the people of the world have a tight to life andprogress and the fulfilment of their destiny. They have the right to peace and security. They can preserve these rights now only by living peacefu.ly together and by solving their problems by peaceful
methods. They differ in their creeds and beliefs and ideologies. They cannot convert each other by force or threats of force, for any such attempt will lead to catastrophe for all. The only way is to exist peacefully together in spite of differences, and to give up the policy of hatred and violence.

The moral and the ethical approaches demand this. But practical common sense points this way even more."
"If there is anything that Asia wants to tell the world, it is that there is going to be no more dictation in the future. There will be no yes-men in Asia nor in Africa, I hope. We had enough of that in the past. We value the friendship of the great countries, but we can only sit with them as brothers."
"Every government must give priority to the defence of the country. But what is defence? Most people seem to imagine that defence consists in large numbers of people marching up and down with guns. It is true that armed men and machines constitute defence. Defence means many other things, too. It includes the industrial potential of a country, the morale of a country and the like. All this has to balance with the capacity and resources of the country. And you cannot upset this balance of the country.

We have to meet aggression and to resist it and the force employed must be adequate to the purpose. But even when preparing to resist aggression, the ultimate objective, the objective of peace and reconciliation, must never be lost sight of, and the heart and mind must be attuned to this supreme aim and not be swayed or clouded by hatred of fear."
"I see man's repeated martyrdom and crucifixion, but I also see the spirit of man rising again and again and triumphing over evil."

## Editorial Board

Editor-in-Chief<br>Shri Radha Krishna Sud

## English Section

Staff Editor
Student Editor

Staff Editor
...
...
Shri Y. P. Dhawan
Shyamal Bagchee

## Hindi Section

Student Editor
...
...

## Sanskrit Section

Staff Editor
Student Edito

Staff Editor
Student Editor

Staff Editors

## Sindhi Section

...
...
Urdu Section
...

Mrs. Raj Kumari Parshad
Tej Krishna Bhatia
... Shri Manohar Lal Chaudhri
Virendra Pahuja

Shri S. M. Jhangiani Miran Rajani

Shri K. C. Kanda
Shri V. N. Pasricha

The writo aN lrveth desh and
deef,
But D have havisesk keep,

and misestrompe Iotey.
Recal 22.4

(Written in Shri Jawahariol's handwriting)

"Each Morn a thousand Roses brings, you say:
Yes, but where leaves tha Rose of Yesterday?"

Homage to Rashtrapriya Jawahar:a! Nehru Edited by R. K. Sud.

Printed at the Mahajan Press, Connaught Place, New Delhi.


## DESH

Vol. XIII-2 \& 3
Beghhandix College
Kalkaji, New Delhi-19.

## DESH



Contributions for the next issue of DESH must reach the Editors by the 31 st of January, 1965.

## The College Union



Shri P.N. Kirpal, Secretary, Ministry of Education, Government of India, \& Chairman, Board of Administration, addressing the Staff \& Students at the inaugural function of the College Union.


Student Members of the Executive with the Principal and the Adviser

The College Union

$\uparrow$
Participants, the Judges and Members of the Executive on the 12th InterCollege Debate for the Deshbandhu Cup.

The Hindi Parishad
Tej Krishna Bhatia and Balbhadra Ojha who won the Prem Chand Trophy for the Inter-College Story Competition held in the
S.R. College of Commerce,


Delhi

That we are young and students, should give us not only the thrill and the sense of joyous carefreeness, which this state confers, but also a sense of duty and responsibility. "The battle of Waterloo was fought and won on the play-grounds of Eton." Yes, that is the key sentence. The college life, culminating with the getting of a Degree is not that all important because it launches us on a successful professional career. It is our first step into the world that we are not only going to live in, but possess, the life we are not only going to live out, but shape for ourselves. This means we will not only step into the shoes of our elders, but also realize the same. On us will remain the task of not merely upholding the standards, but of lifting them.

With the passage of time values change, and it is for us to mould them in the light of the realization that there are certain things whose values are fixed and eternal. So many things that were taboos yesterday are common matters of fact today; so many things which were considered good in the past are of no value to us. This is bound to be not only because we are progressing or because times change, but also because we are going forward to build a universal outlook and a universal society. But luckily for us the values that are eternal, are not only of all times but also of all places and all peoples.

Being students and young we can be idealists, I for one, think it better to be, than not, for even if most of our idealism wears off in its rub with the daily struggle of life that awaits us, still our ideals do not wholly perish and disappear. And all this is for good.
"Old order changeth, yielding place to new."
But, let us not leave all to God and Fate.

# BACHELOR OF NATURE : <br> HENRY DAVID THOREAU (1817-1862) 

Shyamal Bagchee, III Year, B.A. Hons. (English)
"......That I may not disappoint myself, ......That my weak hand may equal my firm faith"
-Thoreau: 'A Prayer.'

Henry David Thoreau is one ot the most remarkable names in the realm of American thought and letters. Thoreau was primarily a thinker and experimenter, but he was also a gifted, though till recently under-rated, poet. He was a thinker, and his thinking concerned human life-the questions of living both as an individual and as a social creature. In order to comprehend this a brief discussion of his life and works may be useful.

Thoreau was born on 12th July, 1817, in the town of Concord in Massachusetts, U. S. A. His father was a maker of lead pencils-a trade to which David himself turned. in a financially difficult period of his later life. His name at birth thas kept French Huguenot. His childhood was spent in the natural surroundings of Concord. At the age of sixteen he entered the Harvard University having qualified from the Concord Academy. He was an extraordinary student and mastered English poetry aed Greek and Latin languages while in Harvard. Being a voracious reader he seldom found company and led a lonely life-and very much missed his "old and almost forgetten friend, Nature." He was admitted to the

Degree of Bachelor of Arts in 1807 and took up a teaching assignment at the Concord Grammar School. This post he quitted, however, on being informed that he had to administer corporal punishment.

- Towards the end of the same year he met Ralph Waldo Emerson, who influenced young David's mind to a great extent. On Emerson's advice he started keeping a journal from the 22nd of October, 1837.

In 1838 Thoreau with his younger brother John started a private school whete they eliminated the system of corporal punishment. This school, however, had to be closed down due to the failing health of John. Next Year in August-September, John and David undertook a two week boat journey on a self-made boat, which supplied material for Thoreau's first important book: "A Week on Concord and Merrimack Rivers' (published in 1849).

Emerson had read some of Thoreau's poems and was impressed. He, therefore, promised to get Thoreau's poems published. At this time Thoreau came down to stay at Emerson's place. They developed a deep friend-
hip and undertook occasional trips to the countryside. It was here that lis "Week" was published.

In the year 1845 Thoreau undertook a novel experiment which lasted a little over two years. He made a small clearing on a piece of Emerson's plot, and raised a cabin where he lived these years using the bare necessities of life, raising his own. crop and doing every thing himself. This experiment he later described in his most famous book entitled "Waldén." or "Life in the Wood" (1854) The aim of this experiment was to reduce life to its barest minimum and "Hrive it to its lowest cerms" It is a book which tells us how man can do away with all the paraphernalia of pompous living. It was a unique ex. periment; a pioneering work. Though its value may be nought in our world vet the sincerity of purpose and belief cannot be questioned. Walden aas been called Thoreau's Economics. Professor Oscar Cargil calls it "the strongest antimaterialistic book, written by man. True, he surprises us by showing how cheap can life be purchased in terms of pounds and shillings. And he had written elsewhere:
"I love a life whose plot is simple And does not thicken with every pimple.'
The only purpose of reducing life to its "lowest terms" was not to do away with the excesses of living. but also to have ample leisure for intellectual pursuits, and to love Nature. For without these life meant nothing to him.

A remarkable feature of "Walden" is that it presents us glimpses of a
man with a sensuous love of beautythe beauty of nature. The life that is decribed by Thoreau in this book is, in fact, the embracing of the essentials of life, the life at its best and not a renunciation of life.

The work for which Thoreau is best remembered in our country is his essay: "Civil Disobedience" in which he speaks of non-violent opposition to a standing Government which engaged itself in the Mexican war. It was this eassay which was used by Mahatma Gandhi as his manifesto for the civil resistance and Non co-operation Movement in South Africa and India.

In this essay Thoreau envisages an ideal State where the government consisting of a few. people will be replaced by evolutionary individualismhaving come as the result of a sense of perfect neighbourhood.

The relationship with Emerson were strained due a bitter misunderstanding. The last days of Thoreau were spent in a companionless state at his paternal home where he died of tuberculosis on 16th of May, 1862,

Not much critical attention has been paid to the poetry of Thoreau. True, that Thoreau had not been primarily a poet, and that with the passage of time he relied more and more on prose than poetry. Yet his poems are marked by the same sincerity that is present in all his works. At places his poems are really enjoyable and moving, being full of homely images and aphorisms which also mark his prose. This is what the critics call "Thoreau's' celestial homespun."

# My First Trek In The Hills* 

Shri J. K. Jain

## III-From Bagyanti to Matyana

Having been told that a Shrimad Bhagvad session was being held at Bagyanti, I made it a point to attend it. It lasted for seven days during which the whole of the scripture was to be recited and explained. Each day the session began at 10 A.M. with recitations of Sanskrit verses for two hours, followed by a break and then a commentary in Hindi and ended with ecstatic kirtans. A well-known Sanskrit scholar from Simla conducted it. Immaculately dressed in a white kurta and white dhoti, with a corpulent and proud face and long hair, he had a commanding presence and moved about like a monarch. In the gaily decorated pandal, he was seated on a high pedestal. He struck people with awe and some of his awesomeness was transferred to me, too, as I showed the guts to face him and put questions ! He explained the meaning of the scriptures in the familiar learned idiom and intoned about tbe spirituality and the spirit of renunciation of Ancient India without caring to explain how it was that it had betrayed us. Like all others of his tribe, he remained untouched by the humanistic spirit of the modern Western civilization. If he had his way, he would turn every one into an apostle of self-denial. Then he fought a losing battle for the propagation of Sanskrit. He wanted to set
up Sanskrit Pathsbalas where young minds should study the scriptures and be imbued with their spirit.

As assembly of this sort brings out the religious fervour of these folk, they come in hundreds. The women are dressed in their fineries and from a distance their enclosure looks like a splash of saffron and yellow. One person bears all the expenses that run into several thousand. Every day all the guests are given one meal, cooked, in pure ghee, consisting of four or five 'Salona', courses. The method of feeding the people is extremely simple. They squat in long rows in a bare field and are served on leaves; there are no spoons to eat with. This way, hundreds of people are feasted in less than half an hour. After the meal is over, people pick up the leaves and dump them into a corner, Thus very little botheration is inflicted on the host. The host is humble, par excellence. He welcomes all with folded hands and a gracious countenance and deems it a great privilege to get an opportunity of having so many people at his place. The caste distinctions are, however, maintained scrupulously. A separate enclosure is made for the low-born and they are fed separately. Such sessions perpetuate both the best as well as the worst. It is through them that
people imbibe their sense of moral and mpiritual values and it is also through hem that the caste-system gets a new Lease of life and the will to be happy lere and now, on this shore of eterlity, is weakened.

At Bagyanti I was introduced to ore R-nand, a student of B.A. at Solan from a neighbouring village of Barihana. He invited me over to his place. His father was a road-inspector. His house was almost palatial, the finest in that locality. He seated me in his naively furnished drawingroom whose walls were crowded with pictures. He served me tea in a cheap tea-set. Though he was looking after me well, his eyes showed that he had not felt convinced about my being a lecturer. My worn and loose pull-over and worn trousers, my short stature and my youngish looks, troubled him. It was 'Kubla Khan' and the Immortality Ode' that came to my rescue ; he put me questions on those two poems. After I had tackled his difficulties, his faith in my bonafides was complete and he was all respect. I found in him a keen and eager student, struggling hard with certain disadvantages that he was not at all responsible for. He could not manage his English. That was the reason that in spite of hard work and a sharp mind, he got poor marks.

My next destination was Matyana After an arduous and exacting climb of $2 \frac{1}{2}$ miles. I reached Sandhu. I was panting and sweating like a horse under a strong sun. There was, on the way, a red rock whose surface looked as though it had been coated with
grease. A spring gushed out from it ; its water, they said, had miraculous medicinal virtue. I drank from it but did not like the taste.

From Sandhu, I took the short cut to Matyana and passed through Karel, a village of Kolies, the low castes. I stopped for a while at a house to have my breakfast of 'Sattoo.' Only a young girl and her old mother were there and their manner was diffident and obsequious. When I asked for a plate, they felt shocked. I, obviously, belonged to a higher caste. How was it that I was prepared to use their 'polluted'/utensils? There must be something wrong, the women thought. Anyhow, I was given a clean brass plate. I smoked their hooka, too. The mother, somewhat frightened in the beginning, then opened out. She pressed me to stay with them for a day at least but I had decided to reach Matyana that very day. If I went on stopping like that, I would never reach Narkanda even, not to speak of the Kulu and Lahoul valleys. I learnt from her that these people, too, held religious assemblies like 'Satya Narayan ki Katha' which was a much less expensive affair than a Shreemad Bhagvad Session.

Matyana is a small township on the Hindustan-Tibet Road, bigger than Kufri, though. Its only distinctive feature is the presence of Tibetans who were quite at home there. They ran two restaurants which drew large numbers of customers, as the food they served was good as well as cheap. Their short women, with broad and pretty faces,
dressed in their traditional gorgeous costumes were selling off little things.

That day the Maheshwari Devi Tournament was to be held. It was instituted two years ago in honour of the goddess Maheshwari, the deity of the surrounding villages. All such functions here centre round gods and goddesses. Thus thete is achieved a peculiar combination of the religious and the secular, the spiritual and the sensuous. It was an annual feature of the life of that town and held on the local Aligher-Secondary School grounds. It was very well attended. The crowd of people that had gathered there was in a holiday mood, as it was quite natural; the very air was gay and festive.

Women were seated on a raised platform, Old Punjabi-style 'Salvaar-Kameez'-with broad patterns and loud colours-were quite popular among the younger women. As I looked at them from a distance. I saw a sort of chequered design in yellows and saffrons of 'dhathoos' and blacks of umbrellas.

This tournament symbolized the fraternity of the old with the new; competitions in new games like Volleyball and Badminton (played by tall, fair and attractive youth from Kotgarh and Kotkhai) and traditional native sports and dances were organized.
'Thoda', a local sport, was the high light of the occasion-refreshingly primitive, purely masculine in every sense of the word. Feeble people could
not play it. Its pageantry and colon were such as could be created by the people alone. The arrival of the con testing parties was announced wid great fanfare. 'Nagaras' (drums) wen beaten; 'Karnals' (trumpets) blown and 'Shehnais' played. The partici pants were drunk and moved toward the arena with gay abandon, brandish ing flashing swords. Each party hai its ace who was the most unrestrained reveller, leaping and shouting obscenities. The instrumentalists settled down in one corner. The harnala issued piercing notes. The roar of the drums and the rhythmic beating of 'dholaks' cheered the hearts of the spectators. The players started dressing up in view of all. They wore stiff chooridars, made of stout coarse material, resistant to the thrust of an arrow, and arranged in several folds. Their heavy boots reached up to their ankles. Some put on finger-and wristguards too. They carried long bows, with bamboo strings and bamboo arrows, about $4^{\prime \prime}$ in diameter. Having satisfied themselves with their accoutrements, they looked around to ensure that they were admired and jumped into the arena. They divided themselves intu pairs. The leading pair consisted of the aces of the two parties, old men whose eyes sparkled with animation and whose limbs pulsed with energy. The game started. One of a pair fixed the arrow in the bow and pulled hard at the string. The other shivered his fish-like legs before him to confuse his opponent. The arrow was released. If it hit in the shin, the shooter got one point and squealed triumphantly and frisked merrily. If it did not, he tried to

JJjust his face so as not to look browbeaten, hoping that he would get it the next time. Then came the turn of the opponent He dipped the tip of his arrow in his spittle. emitted on the ground, to leave a mark on the shin. The thrust of the arrow was quite powerful, Through repeated exposures, the shins bad adapted themselves.

Then there were folk-dances. The first was called 'beeshu' (also maal). The dancers divided themselves into two groups. The principal dancers wore a special costume consisting of a white and high turban, a white cloak (a combination of shirt and skirt), ornamental chains slung over the left eyes, and feathery crests shining on the heads. They carried two swords each, in a crossed attitude. The subordinate dancers wore caps, red shirts, narrow" pyjamas and loud scarves around their necks. They beat 'khanjaries', The procession moved slowly, gracefully, headed by two singing women, 'toornies', who were professionals. The dancers arranged themselves in a circle. Their movements wete delicate and languorous. I tried to learn of the significance of this dance but there was nobody who could explain it. This dance got monotonous after sometime. Its slowness was too much of a strain.

The 'Diwali' dance was more vigorous and virile, corresponding to the Punjabi Bhangra. It was performed by a varied assortment of people, dressed in all sorts of clownish styles. One of them wore a one-legged pyjama another a 'dhathoo', an item of
feminine dress. They moved in formations of twos, swaying like satyrs. It was, obviously, a comical dance The dancers made obscene gestures and uttered obscenities. The old buffoons, in particular, enjoyed themselves.

Functions of music and dance of this kind are a vital aspect of the life of these people. Whenever the rush of work is relieved (around Diwali, after harvest and in winter) they assemble, sing and dance. On such occasions, they let themselves go--drink, revel, keep night-vigils. Young lovers have their rendezvous and extract as much fun from life as they can. It is this that keeps them alive and preserves their "virtue", elan vital, inspite of the monotony and toil of the routine of their life. They have the two epics-the Ramayana and the Mahabharata-in their own dialect and a host of love-songs, of course. Their 'poetry' is handed down by oral tradition. There is not even a single piece of their poetry in the written form. Their speech is very sweet, full of vowels; the consonants are softened. They can speak at a tremendous speed and then their speech sounds like sputtering to a stranger and reminds him of French or Bengali.

At this tournament, I met the worthies of the town, all of whom were politically conscious. They said that they could not come into then own until they had their own legislature and that they would continue their fight for it until they achieved success.

# ARE WE PROGRESSING ? 

Ranbir Singh B.A. 11 Year

Are we really progressing? Are we better off than our fore-fathers were? The first impulse would, naturally, be that we are progressing; but if we look deep into the question and carefully analyse it, we find that we are actually retrogressing, Man, in his desire to create more and more wonders, is absolutly neglecting the spiritual values of life. We have made considerable improvements in science and technology but what good are these improvements if we neglect our morals and forget our creator, God.

Man has, undoubtedly, made a great progress, as far as the physical aspects of life are concerned. Human brain knows no limits. It can create astonishing things and do many wondets. Recently, man has invented fabulous things--things that our fore fathers could never dream of. Looking at the present situation, it seems hard to believe that the small human brain could do such a lot.

Space Science, in the recent years, has made great progress. Who, a few decades back, could think of sending into space rockets and sattelites travelling at several times the speed of sound. In fact, no one even dreamt of it. Well, scientists in U.S.A. and U. S. S. R. have done it and thereby proved that man, using his brain, is capable of doing a lot. The Satelites sent into space by the Americans and the Russians, have proved very useful to mankind, Sending out messages
from one side of the world to the other, forecasting weather accurately and getting close photographs of planets are a few of the things that these sattelites have done for us. Scientists, now, hope to land man on the moon by the end of this decade.

Similar progress hás been made in the field of medical science, Modern medicines have shown such wonders that thousands of patients, who would, perhaps, have died of the same diseases, a few years back, are saved every year. Fatal diseases like cancer are being cured now; patients with disabled organs of the rody are being given artificial organs. There have also been cases where those pronounced dead have been brought back to life, as a result of the modern efficient medical eqiupment. This is really astonishing and highly beneficial to mankind.

The modern housewife would probably laugh if you told her to fetch a pail of water from the well or to light a fire to cook the food on, or to wash the clothes at the river sidethinking that you were joking. She has got very much used to the recently invented equipments which do all this in seconds. All she has to do is to set the counters and press the buttons and then relax, No wonder the old ladies wish that they were, born fifty years after they actually were. This itself is a clear evidence of man's tremendous improvements in recent years.

## The Bengali Literary Association


mene from 'Chitrangada' showing Sankari Maitra is Madan) and Bela Mazumdar (as Chitrangada)

xene from 'Chitrangada' showing Tanuja Banerji (as Arjuna) in action


A scene from 'Chitrangada' showing Bela Mazumdar, Saraswati Poddar, Juthika Biswas and Sankari Maitra


A scene from 'Iskabaner Tekka' showing S.P. Ganguly H. Chakrabarty, \& B. Chowdhry, in actlon

## Inter-College Youth Festival



A scene from the one-act play: 'Post-Graduate showing Ganguli and Kaul in accion


A scene from the on-act play: 'Post-Graduate' showing Ganguly Satinder Vij \& S.R. Gogia, on the stage.

These are only ofew and striking examples illustrating the advancement made by mankind. There has been similar progress in almost every physical sphere of life and it is impossible to discuss each of them in detail in this short article. What is really responsibls for all this ? Improvent in educational facilities is the cause of this steady progress of mankind. The creation of new theories and laws in science have actually causedthis great advancement of society only physical advancement.

If the spiriutal aspects of life are analysed, we find that man has had a severe fall from the ladder of progress,' which he was trying to climb. His morals have come down to the lower limit. In short, man has morally retrogressed.

Today a brilliant nuclear scientist has more value than an ariny consisting of armed thousands. This is because the scientist can make such atomic weapo4s which. have the powers to destroy the whole world within a fraction of a second. The dangerous atomic weapons that have been created today are a very dangerous threat to mankind, every nation wants to invent better weapons-thinking that by doing so, they will be leaving others behind on the path of progress. They are alsolutely wrong in thinking so, because they wfll be inviting death for themselves as well as for others. This criul death is approaching fast. A sight quarrel between two nations, which can possibally be setteled by peaceful means can lead to the destruction of the whole world. This is not morality-why should all the nations suffer because
of two nations which are not on good terms? Why should the innocent childern and the innocent women suffer? Why can't man-if at all he wants to,-fight as the heroes of the past did?

It is not only men that are morally falling but the women Comparitg the women are no batter of today, with those of the past, we find that they are deteriorating day by day. Prostitution, strip-tease acts, nude dances and many similar things are a very common sights in the modern hotels and restaurants, Go to a book shop and you'll find that most of the books are on sez You'll find books with pictures of naked girls, books with sex stories and othere filthy literature What is the use of all this ? Surely, good-charactered men can do without all this filth; but good charactered men hardly exist today.

Dishonesty is another thing that is pushing mankind towards its dcom. Feople today, want to get the maximum out of every thing even if they have to perform externaly dishonest deeds. Honest people-very few in number today-have to suffer beconse of dishonest men. The desire to satisfy bimself has led man to forget truth and God; God. who created him and gave him this world to live on.

Chen., is man progresring ? Surely he is-but what good is this progress, when the spiritual values of life are being neglected If the world carries on thus, then the day is not far when man will destroy himself the wrong done, and, then it will be too late to redress.

# Nature in English Romantic Poetry 

Rita Chaudhry B.A. III year Hons. (English)

Of all the aspects of the Romantic Revival the new sensitiveness and awareness of the beauty of Nature was the most remarkable and the most impurtant. The chief glory of Romanticism lay in the subtle and intimate interpretation of the natural world. Every poet tesponds to Nature according to the singular qualities of his mind and his temperament with the result that the poetry of emotional interpretation takes different forms. as in the poetry of Words. worth for whom Nature was divine and whose main concern was to communicate with the divine spirit working behind the outward manifestation of Nature; for Shelley, Nature was a mystical revelation of the eternal spirit and for Keats Nature was rich because of its colour and grandeur. Yet, whatever be their mode of ap- . proach towards Nature, they found in it an inexhaustible source of lovely images and pictures and they were earnestly engaged in the pursuit of Nature in order to capture and create its beauty and splendour in verse. Wordsworth conveys the loveliness of mountains, fields, rivers; Shelley, the tameless energies of the wind, the vast expanse of the sky and the sweet warble of the skylark; Keats, the magic of "faery lands forlorn" and "verdurous glooms", with an intensity (Keats : Ode to the Nightingale') of emotion which makes their poetry immortal.
"Wordsworth," as Hallack has
very aptly said, is one of the world's most loving, penetrative and thoughtful poets of Nature." All the major elements of Rousseau's ideal reappear in Wordsworth but the influence which Nature exercises upon his mind is of a far subtler kind. "Rousseau delighted in colourful vistas which manifested the true inage of Nature at work, but Wordswerth saw mysterious implications in the depth of natural objects. He enjoyed intense mystical experiences which inspired some of his most remarkable poetry. 'I grew fostered alike by beauty and by fear'. And even in these early experiences we flid the presence of his Nature feeling that Nature could 'chasten and subdue' as well as exalt. When be appropriates the bird caught by another's springe, 'low breathings' pursue him from among the hills, and when he unlooses another's boat and rows out under the stars 'a huge peak' strides after him like a living thing. (Wordsworth's Prelude) But there were moods of rapture too, when the world became a faery place as be listened to the cuckoo. In 'Tintern Abbey' the ecstasy of his youthful love for Nature.

The sounding cataract
Haunted me like a passion: the tall rock,
The mountain, and the deep and gloomy wood,
Their colours and their forms, were then to me! An appetite.

Yet he had to leave this phase behind for a profound and subtler mood of delight in natural beauty. And nature became
'The anchor of my purest thoughts, the nurse, of all my moral being.'

Love of nature is no longer a merely poetical luxury of sentiment, but a religious experience of great depth and intensity.

Wordsworth drew his strength from the common things of sky and earth' to which he gave a meaning they had never taken before. In his eyes the wild flower acquires a strange implication in human destiny and inspires "thoughts too deep for tears". Even loose stones are, according to him, aglow with life and moral sensibility. He writes about the daily teaching that is in woods and rills.

The silence that is in the starry sky;
The sleep that is among the lonely hills.'

He was sensitive to the expressiveness of form and space, of solitude and silence. His apprehension of Nature was determined by his senseendowment, the eye, which was penetrating; he looks through the visihle scene to what he calls its 'ideal truth', dwelling especially on the mountains, deep woods and the clouds.

Wordsworth, to a large extent, in-
flunenced Coleridge to acquite a more strong and confident acceptance of the faith in the joy-evoking power of Nature. It was this faith that made him defy the conventional 'melancholy' of the nightingale and write with force that in Nature there is nothing melancholy, (The Nightingale) 'He owes all his intellectual experience to 'lakes and mountain's. hills and quiet dales of England, among which so very few of his days had been passed" (Fears in Solitude). tis chief quality is his faculty of minute and subtle observation, which he may have learned from Wordsworth but himself developed to a degree of delicacy. The 'creaking of the rook's wing' and the braches' ash, 'unsunned and damp, whose few poor fellow leaves.
'Ne'er tremble in the gale, yet tremble still,

Fanned by the waterfall.
In 'This Lime-Tree Bower my Prison, and the poem' The Nightingale' are examples of this power. There are other pictures too, painted with a bruader brush; those like the ice-fields or the tropical ocean in the Rime of the Ancient Mariner'.

At places Coleridge spritualizes Nature, and as such a new aspect of his poetry i. e. his pantheism becomes distinct. Like Wordsworth he came to feel the presence of God in natural objects. In 'Frost At Midnight' he says:

Which thy God

Utters, who from eternity does teach.
Himself in all and all things in Himself'.

He wants his son to be educated by Nature itself: clouds, mountains and oceans will be his books and God will be his Teacher :

Great universal of Teacher !
The shall mould
Thy Spirit and by giving make it ask."

His spiritualized Nature is rich in colour and melody. Above all he is a master of that region in which Romance and Nature meet-the region of wonder and horror made fascinating by his imagination. The notable examples are 'Christable' and 'The Rime of the Ancient Mariner.'

For Keats the visible world meant chiefly the world of Nature," yet his love of Nature is not of a reflective or mystical order. He had little sense of those invisible realities, which Wordsworth said were always working behind the outward appearance of a natural object. He seeks to know Nature perfectly and to enjoy her beauties with no ulterior motive. He had also little taste for the wild and a we-inspiring manifestations of Nature, for mountains, wastes, seas, storms and tempests. In Keats the sentiment for Nature is simpler than in Wordsworth or Shelley. He loved the woods, meadows, birds, simple flowers of Spring the winding streams, with a simple and intense sensuosuness. The humming of the bee,
the glitter of the sun, the passage of a violent gust of wind over a field of barley and the loveliness of the season of mists and mellow fruitfulness-all these evoked a passionate and an immediate response from him.

Keats had been from the outset a close and eager watcher of Nature. lt is the delicacy of his perception that is most remarkable; for example, in 'I stood Tip-Toe upon a little Hill.'
'Here are sweet peas, on tip-toe for a flight
With wings of gentle flush o'er delicate white,
And taper fingers catching at all things,
To bind them all about with tiny rings.'

The vividness and accuracy of detail were the main features of his observation of a natural landscape. Such lines as
'A little noiseless noise among the leaves,

Born of the very sigh that silence heaves.'
are Wordsworthian in the quality of observation, yet the music and rhythm are characteristically his own.

In 'Ode to a Nightingale', Keats's love for Nature's beauty 'finds complete expression. In 'embalmed darkness' he enjoys the fragrance of

White hawthorn, and the pastoral eglantine ;
Fast fading violets coverd up in leaves;
And mid may's eldest child ;
The coming musk-rose, full of dewy wine,
The murmurous haunt of flies on summer eves.'

For Keats, the supreme truth lies in Nature's beauty and its power to respond to every varying phase of human heart. As Selincourt says, "Nature does not call upon him to understand her. but simply to recognize her." He deals with the infinite wealth of Nature-her colour, her perfume and her beauty-in a sensuous and picturesque manner. And it is this quality that makes . him the most sensuous of English poets after Spenser.

Shelley, another remarkable poet of Nature, differed a good deal from Keats in his approach towards Nature. While Shelley revels in wild winds, clouds. storms and tempestuous seas, Keats loves the quieter and delicate aspects of Nature. In enjoying the beauty and colour of Nature, Keats is more sensuous, simpler and passive than Shelley. Shelley saw Nature as a giant spirit, who has the power to create and preserve or to destroy. The beauty of a simple flower, the perfume of the spring and the soft, murmuring music of a stream, were lost on Shelley. His mind was fascinated by the more forceful aspects of Nature.

At first he was content to follow the path of communion with Nature as set by Wordsworth and an early example of this influence is seen in 'Alastor'. He regards Nature as a moulding power. The youth in this poem is 'nurtured by solemn vision and bright silver dreams.'

## 'Every sight

And sound from the vast earth and ambient air

Sent to his heart its choicest impulses.'

But this influence was transient. He could only exploit Nature, not worship it, and he does so in Epipsychidion', utilizing every natural object which can contribute to erotic atmosphere." His love for Nature is beautifully expressed in the great lyrics, as for example 'The Ode to the West Wind; 'The Cloud; and 'The Skylark.' The first of these combines with the highest degree of imaginative quality, personal despondency and prophetic passion. In this poem, Shelley has at many places, personified the natural objects. He puts life into a dull litter of dead leaves flying in the wind by making them 'ghosts from an enchantet fleeing.' His picture of the grey and watery clouds is beautiful.

Loose clouds like earth's decaying leaves are shed,

Shook from the tangled houghs of heaven and ocean,

Angels of rain and lightning !"
when we took the pledge to throw the invaders out of our country and make India a free nation for all times to come. Let us renew our resolve and then work fot it, live for it and die for it. The call of the Nation demands only one thing: 'Service and Sacrifice. $\qquad$ .

Let each Indian feel and say
proudly, with a burning urge to serve the Nation-'I shall work for my Motherland, live for her and die for her, if it is demanded of me. This is my duty, first and last, because this country is mine." With these words let us pay our homage to our late Prime Minister, Shri Jawaharlal who lived and died for India.

## WE TOO DIE A LITTLE!*

Only with death does the void appear
Stark in all its magnitude;
A nation mourns-
A people's shed and unshed tears
The tribute of our hearts
As we pass in homage
Through the hours of day and night
Each in our grieving solitude.
And as we watch you pass
On the final journey,
We too die a little.
For with you dies a splendour
And a dream.
The splendour of courageous struggle
For our nation's freedom,
The final flash of that heroic few;
The dream of human liberty.
You were the symbol
Who held the flag for all to see,
You made your vision ours
And through your eyes
We saw the future of our land -
Free of want, from prejudice and tyranny.
You were the voice of our highest hopes
And now that voice is stilled
A silence shrouds our land
And leaves our hearts bereft.
We loved you for our own
With tenderness and gratitude and pride.
With the warmth of an old friend-
So we are left
Bewildered, unbelieving.
For to your indomitable sprit
Death is no kin,
And the integrity of our world
Is denied.
Harji Malik
$\qquad$

## IN MEMORIAM*

Now you are gone, to join the ranks of those whose names will ever live in every heart with joyous fragrance, like the budding rose that was of you so intimate a part; you fought and strove to give our nation light, to bring it freedom, break its binding chain, you warred against a vast, imperial might, you suffered grief and anguish, loss and pain; but yet you fought, and when at last we won and took our place in freedom's glowing light you did yourself become the nation's sun and for her welfare laboured day and night. Now you are gone, and we who stay behind will cherish our sweet memories of you and strive with every power of heart and mind to make your dreams of glory come out true.

Dr. KARAN SINGH, Sadr-i-Riyasat, Jammu and Kashmir

*Reproduced from The Hindustan Times, New Delbi.

## OOTACAMUND

Shri D. N. Pasricha

OOTACAMUND, known as the Queen of Hill Stations, stands at an altitude of 7,600 feet above mean sea level in the Nilgiris in Madras State. Its climate is both bracing and equable. Its natural scenery is magnificent, its hills, ravines, woods and grassy downs appeal to the aesthetic sense. For the introvert and the nature lover, the walks and drives in and around Ooty are a veritable paradise. Turn where one will in Ooty, charming scenery abounds. The gardens here ate a constant scene of delight with their wealth of flowers and foliage.

The soft south-wind, the flowers amid the grass,
The fragrant earth, the sweet sounds everywhere,
Seemed gifts too great for man to bear.
(William Morris)
How aptly can this be said about Ooty !

I spent most of my summer vacation in Ootacamund, 1700 miles away from Delhi. I have visited most of the hill stations in the North and barring Darjeeling and Gulmarg there is none to equal Outy. This holiday resort is much cooler and pleasanter than Simla or Mussoorie. In verdure, it beats all its rivals including Darjeeling. Situated near the equator it has
all the tropical glamour of trees and shrubs. In fact, hete one comes across trees, plants and orchids from all over the world, particulary Australia, South Africa, Equador and Guatemala. There is hardly a barren patch of land on the hills. In and around Ooty there are capacious tea plantations. There is hardly a place where one can not see the majestic, towering, lithe Eucalyptus (blue-gum) trees in clusters of thousands. When the soft wind blows they shake and bend with a subtle grace like dancers in fairy tales. It is a pity these exquisite beauties are being felled in favour of potatoes.

Ooty has the typical European atmosphere. It has been, and is still, a favourite with the Britishers. Typical continental vegetables like red cabbage, rhubarb, sprouts, artichokes and tapioca are grown here. There is no dearth of beetroot, french beans, big cauliflowers, capsicums, chaute and celery. Even the cows in Ooty are of Australian and English breed, red and stocky. In the heart of the city amidst modern buildings, one finds immense potatoe plantations scattered everywhere, giving Ooty the appeatance of an English village. Huge cypresses and firs, particularly the Australian type, enhance the beauty of Ooty's landscape.

Todas, the original habitants and the native tribal people of the Nilgiris,
make an interesting study from anthropological point of view. Still untouched by modern civilization they are scattered all over the Nilgitis, living in small groups in typical cylindrical straw and wood huts. One finds a couple of huts at a place and the next habitation two or three miles apart. Till 19I2. the Todas used to wander naked. According to the latest census only 400 of them are left. The men have handsome Greek features and athletic build; the women have curly hair, blue eyes and fawn complexion. They weave their own clothes, practise polyandry, and burn their dead after embalming the body with scents and herbs for over a month. Till recently they used to kill baby girls. They are more or less Hindus by religion. They are vegetarian but kill buffaloes on ceremonies like mass marriages. They live mostly by grazing cows and buffaloes but seldom work in fields. They speak a dialect very akin to Greek. During celebrations men participate in cross country race and being sturdy and light of foot, they run on a steep hilly track with equal ease as on a plain track.

Dodabeta, the highest peak in Madras State, is situated in Ooty It is only 8,640 feet high but gives a breath-taking bird's-eye-view of the town and its suburbs. A vast greenness of the Nilgiris is revealed from the top. Churches, houses and roads appear conspicuous amongst the green surroundings. There is a triangular stone at the top with inscriptions by Tagore, Nehru and Joyce Kilner, that of the latter being worth recollecting:
"I think I shall never see a poem as lovely as a tree. Poems are made by fools like me, but only God can make a tree." The intoxicating and fragrant environment of Ooty must have inspired the poet in giving vent to such a natural and unsophisticated expression.

Ooty has a lovely green race-course. Racing is very popular with the tourists. The municipal market near the race-course is worth visiting, particularly for flowers, fruit and vegetables. There is no dearth of shady walks in and around Ooty and one never feels tired of walking. North of Ooty is situated the Marlimand, a small lake in picturesque surroundings.

The two primary beauty spots in Ooty are the Ooty Lake and the Botanical Gardens. The Lake is a bowlshaped stretch of water situated amidst most effulgent surroundings. A road skirts the lake and affords a pretty walk. The lake is a popular resort for fishing and boating. Its calm water, studded with lotus and lily, is refreshing and sparkling. The Botanical Gardens have a unique, natural set up. One never gets tired of visiting them again and again. The velvety thick green grass, towering firs, glass houses, flowering shrubs, water ponds, orchids and cacti and multitude of variety of flowers make a pleasurable sight. The entrance to the gardens is plain but they slope upwards gradually. The Italian section is superb in colour and variety with artistic display of Zinnias, Dahlias, Gladioli and Delphiniums. Pansies, French Marigolds, Daisies and Calen-
duli are plentiful and elegant. There is many a lonely corner where one can sit amongst thick groves to meditate, enjoy nature and listen to the melodies of birds. One finds here a variety of birds like thrushes, black birds, red vented bulbuls, barbets, flycatchers, nut hatches, white eyes and purple sun birds. Life and freshness permeate every nook and corner of the gardens. There is no better tonic for the depressed minds. It is here one realizes, nay experiences, that a thing of beauty is a joy for ever. Such divine natural beauty is not only fascinating and captivating but also thrills one to unfathomable depths. It inspires noble thoughts.

A visit to the downs is a must for every visitor. One is simply enchanted by velvety undulating landscape with breathtaking radiance and clarity. A visit to Sim's Parks in Conoor, a nearby hill station, is another exhilarating experience. These parks, though smaller than Ooty gar-
dens, have an added beauty of a small artificial lake. There is better variety of trees. At places the trees are so thick that one has the feeling of utter solitude in a jungle.

A drive between Ooty and Conoor offers visitors a gorgeous and enchanting view of the Ketty Valley whose beauty is a class by itself. A splendid view of Mysore forests is obtainable from Glenmorgan Pykara Hydro-electric Project. On the way one can also visit a well-known Toda cathedral.

My visit to Ooty has been a memorable one. The charm and variety of this superb hill station are always fresh in my mind. In a carefree or wistful mood, whenever I think of Ooty's landscape, I am reminded of this naive verse by John Dyer:
"Ever charming, ever new, When will the landscape tire the view ?"
"To one who has been long in city pent,
'Tis very sweet to look into the fair And open face of heaven--to breathe a prayer Full in the smile of the blue firmament. Who is more happy, when, with heart's content. Fatigued he sinks into some pleasant lair Of wavy grass, and reads a debonair And gentle tale of love and languishment? Returning home at evening, with, ear Catching the notes of Philomel,-an eye Watching the sailing cloudlet's bright career,
He mourns that day so soon has glided by:
E'en like the passage of an angel's tear
That falls through the clear ether silently."
(John Keats)

# My Favourite Play 

Harkirat Singh, B.A. Hons. (Old Student)*

Iam a supporter of the theory of humours and it is my belief that the likes and dislikes of a person depend chiefly on the humour dominant in his personality. A believer in joy and jollity of life, as I am, will always like to witness things which make him laugh. Any humorous thing seizes my attention readily and wins my admiration immediately. But while responding to literature, my admitation demands realism along with amusement before it offers itself. The best combination of realism and humour, I have come across sofar, is 'The Alchemist'. Ben Jonson's 'The Alchemist, is my most favourite of all the plays I have read. The very name: 'The Alchemist' filled me with expectations and a reading of the play gave me much more than I expected. Ben Jonson' in this play, has taken up a plot wherein he could make fun of every existing folly of his time. As is clear from the title, his main purpose was to expose the tricks of the alchemists, but he has ridiculed almost all the classes of London society of that time by bringing their representatives in contact with the alchemists. Of the three main characters--Face, Subtle and Sir Mammon-the first two are engaged in the profession of alchemy, The vigour and vitality with which these chatacters are endowed, is shown in the very first scene. In this scene

Ben Jonson prepares us for the pleasure and mirth we are going to have later in the play. The enjoyment of the story in which Face and Subtle figure mainly, is possible only when we know what these persons really are, and there could not have been a better way of giving this information than the one Jonson has adopted. These two appear on the stage quarrelling with each other and revealing the state they had been in before they come to a compromise. We understand completely that Face had been a 'livery-three-pound thrum' whom no living thing would keep company, but a spider and Subtle, with his 'pinched horn nose' used to take his meal of steam in from cooks' stalls'.

Jonson nevier misses an opportunity to make fun of the people not present on the stage. During the quarrel between Face and Subtle. Dol, their female partner, refers to her neighbours as people 'that scarce have smiled twice since the king came in'. At another place Dapper, another character, when asked about his watch says, 'I had lent my watch last night to one that dines today at the Sheriff's.' How naturally has Jonson satirised the cynics, in the first case, and the show-off's in the second.!
*This essay was adjudged the best in The English Literary Society Essay Contest, 1963-64. (Editor)

After Face and Subtle have compromised and determined to cozen tindly, and heartily, and lovingly there is a line of their victims appearing one by one. Dapper is the first to come. He is robbed of all the money he had for a promise of a'famiiiar' for all games. What is interesting here is the way the poor man is gulled and the way the victim is prepared to be befooled. Dapper is all humbleness, whereas Face speaks to him in the way a teacher talks to a dullard in the class. This short conversation shows it clearly.

Face. Do you think that I dare move him?

Dap. If you please, sir.
Face. What! for that money?
Day. No sir, I'mean.
The second victim, Drugger, is not very different in natare from the first one. As Dapper never speaks a sentence without 'sir' Drugger uses 'your worship' in every sentence. This sentence is a very good example: 'I was speaking, just as your worship came here, of your worship'.

The appearance of Sir Mammon, who comes in next, gives a new colour to the atmosphere of the play. He is a dreamy, imaginative and sensuous scholar hoping to possess the philosopher's stone', with the help of which he believed he could turn all the things into gold. He is so confident to possess the stone that be is always worried wherefrom to get material enough to turn into gold. He determines to go 'to all the plumbers
and the penterers and buy their tin and lead up; and to Lothbury for all the copper.' He dreams of becoming the richest person in this world and entertaining himself with rarities., It is here that he gives expression to his sensuousness. In this sentence he is talking about the things he will eat 'I myself will have the beards of all harbels served instead of sallads; oiled mushrooms: and the swelling unctuous paps of a fat, pregnant sow, newly cut off, drest with an exquisite and poignant sauce'. This dreaming of luxuries makes him let out his love of vulgarity when he says, my poets, the same that write so subtly of the fact, whom I will entertain still for that subject'. These dreams of possessing gold, these beliefs of having rare dishes and these hopes of enjoying his favourite subject are bound to amuse us because we are aware that his dreams will never come true; his beliefs are mere castles in the air.

When this absorbing episode of Sir Mammon is over in the play, our attention and interest are sustained by the introduction of two puritan characters, who want to popularize their religion with the help of the 'stone'. How ridiculous does Tribulation Wholesome look when he says, 'We must bend unto all means to give furtherance to the holy cause. 'A good deal of entertainment is provided at the cost of the puritans.

And then comes the interesting turn in the story. The master of the house, where all this trickery was being practised, comes unexpectedly.

Neighbours tell him about what had been happening there. Face, who been acting all this while in the disguise of a captain, comes forth in the dress of a butler and defies the reports of the neighbours. But he cannot save himself for long because all his victims, who have now seen through his tricks, start coming to that house. A complete exposure and undoing of Face seems certain but Lovewit, the master of the house, shows interest in whatever Face had done and thus Face is saved. How cleverly does he send away his other two accomplices--Subtle and Dolrobbed of all their earning. Face
pleases his master by helping him marry Dame Pliant. In this way things come to a satisfactory end.

Though Ben Jonson wrote this play chiefly to expose two main social evils-alchemy and puritanism-he has given things in this play which will continue to please people for ever. All the characters amuse us and entertain us and our interest is sustained throughout. This play, my favourite play, will please any one who has a capacity for laughter and capacity for laughter is one of the qualities which distinguish human beings from animals,
"Democracy is not only the most practical way of running up-to-date communities. It is more than that. It is the only political system which recognizes the ultimate worth of every human being: which gives expression to the conviction that behind and beyond all the enormous inequalities, in education, in opportunity, and perhaps in innate ability, which today distinguish one man from another, there is yet an ultimate equivalence between all men. as men. Democracy gives expression to the conviction that no one of us, and certainly no government, is fit to say that one man is inherently better than another. In a word, democracy is a political system for free men instead of slaves."

John Strachey :
"The Challenge of Democracy"

# Reading for Pleasure 

Sumi Sridharan, Pre-Medical 11 Year

"Reading maketh a full man", said Francis Bacon, meaning not just the study of useful books for the sake of learning, or the perusal of entertaining authors solely for pleasure. For neither by itself can really educate a min. To acquire knowledge we have to read. We also read in our leisure hours for enjoyment. Naturally it is far more irksome to con a difficult text than to skim through a light book.

Entertaining books are numerous and varied. There is always something to suit individual tastessuspense - laden detective stories, spine-chilling war narratives, breathtaking Science fiction, descriptive travelogues, romantic novels, inspiring biographies, plays, poetry, even eerie ghost yarns-the list can go on and on. If, perhaps, you do not fancy books or haven't the time for them, there are the short stories, periodicals and magazines to which you can turn. "The Necklace" by Maupassant is regarded as a classic and yet it is a short story.

Novels are probably the most popular form of reading. In her book, 'Northanger Abbey". Jane Austen describes a novel as a work in which the greatest powers of the mind are displayed. in which the most thorough knowledge of human nature, the happiest delineation of its varieties, are conveyed to
the world in the best chosen language." The term 'novel' has been stretched so far that it includes anything from Dickens to Daphne Du Maurier. It seems almost absurd that two, so very different books as Hugo's 'Les Miserables' and P. G. Wodehouse's "The Inimitable Jeeves" could both be called 'novels'. The former tells the poignant story of a povertystricken Frenchman who is driven to thieving to keep his family alive. The latter is a comedy which keeps the reader in gales of laughter, with the antics of its butler-hero, Jeeves.

Almost as widely-read as novels are murder-mysteries. They have a tremendous appeal for all ages. Towering over the hundreds of crime-fiction writers is Sir Arthur Conan Doyle who created Sherlock Holmes, the archetype of detectives. His stories include such terrifying adventures as the "Speckled Band" and the "Hound of Baskervilles." Agatha Christie's Hercule Poirot, Stanley Gardner's Perry Mason and Chesterton's Father Brown are nearly as famous as the legendary Holmes. I don't know how such gruesome things as crime, and suicide, and murder could make pleasant reading. Perhaps, people find some sort of satisfaction in seeing the heroic detective emerge unscathed through overwhelming odds; the case won and the murder solved.

Science fiction is a far cry from a thrilling mystery bat no less' stimulating. Jules Verne's prophetic books-"Five Weeks in, a Balloon," "Twenty thousand Leagues under the Sea" and "Round the World in Eighty "Days" are now, not the wonder storiest that they were in his day. But they still have millions of enthusiasts the world-over. H. G. Wells, perhaps better known as an historian, displayed his scientific imagination in such early works as "The Time Machine" and "The Invisible Mán".

Enjoyáble reading, in whatever form it be, needs little concentration. But even if you read for pleasure, and only for pleasure, every book broadens your : outloók considerably. Emily Dickinson wrote:
'There is no frigate like a book 'To take us lands away, Nor any courses like a page Of prañcing poetry."

Several books teach as they give pleasure. For example, Hardy's "Tess of the D'Urbervilles" and 'The Mayor of Casterbridge' tell us more about life in Entglish villages than any text-book
on Social History does. Similarly.
Georgette Heyer's novels present a delightful picture of the elite of English society, with its Beau Brummels and debutantes and dowagers.

In American literature, too, there ate many such books. "Gone with the Wind", by Margaret Mitchell, has vivid accounts of life in the extensive cotton fields of the Southern states, just before and during the Civil War. No historical record, however accurate it may be, could portray this in as interesting a form. We have yet another example in Pearl Buck's novels, which are set in China. Through her works we get an idea of the Chinese people, their traditions and customs. A Geography lesson could never be as informative; certainly not as entertaining.

Every book that a person reads leaves an impression on him. Even a casual browsef, who picks up a book just to keep boredom at bay, learns something. While he reads for pleasure, he gathers little bits and pieces of information from this book, and that. All these fragments together form a vast store of knowledge, which enriches his very personality.
"A nation is not to be judged by its weaklings, as they are only the weeds which lag behind but by the good, the noble and the pure souls who indicate the national life-current to be flowing and vigorous."
(Vivekananda)

# THE RIVALS' 

Gurpal Singh, B.A. II Year

THERE was too much swagger about her: brownish hair, thick and long, almost reaching below the tip. Dark eyes and full lips and a fine shapely body. Her name ..well, Ger name was also wrong. Roopali it was or nothing for she got roaring angry if you called her Roopa. And for most of the men in the village it was nothing.

You see it was a big enough village for the man she wanted to pick and choose. Not a town. but may be a thousand inhabitants, a couple of hundred of houses and a dozen or so small shops caught in a fold in the mountains. Most of the men left for Delhi or Bombay before they came to the marrying age. What this meant was that unless a girl followed them, she was hard put to find a husband. And so Roopa, who would have been a princess in a big city with a dozen men at her feet, hadn't a man at all in Hariyal, except Sunder and she didn't like him very much.

He wasn't her style of man and he knew it and when they were together, because she had no one else to be with, she would take it out on him. He was hardly taller than she, with thin wrists and a slight limp where the bone hadn't set properly after he had broken a leg one time as a child.

WeIl, the other day at the annual dance fastival, Sunder had been asked to dance with Roopa only once, when a stranger had cut in upon him. Sunder had known the men from the next village but be hadn't known this stranger who, so boldly, had made successful advances towards Roopa. She had come alive to him. He was a big man, not so tall; may be, but wide and thick in the shoulder.

Sunder, unable to bear her flirting with a complete stranger, went away and walked up the street and along the open hill-side for may be half a mile, but when he came back they were still together and obviously enjoying themselves

Afterwards, walking towards his house, Sunder unable to bear the absolute silence prevailing upon them, suddenly caught her wrist and pulled her towards him. She stiffened, and pushed him away from her so suddenly that he, caught off-balance, staggered across the road. He caught his heel in the grass at the road's edge and fell into the hedge.

She didn't even walk off and leave him. She just stood waiting until he picked himself out of the hedge, as if she despied him too much even to be angry with him. And they walked all
*This story got the first prize in the English Literary Society Short-Story Competition (1963.64)
the way to their village without uttering another word.

If he'd been a man at all he would have left it at that. There were other girls and, indeed, he had no time. The final examination was approaching and he should have been studying.

But his bedroom window looked down the length of the main street and if he looked from his table, he could see everything that went on in the street. If he waited long enough he could see Roopa. She used to help her old father with his shop. since she had no brother. Sooner or later she would come out and stand in the sunlight for a minute and stretch and yawn like a cat.

Sunder didn't date look down at his book in cast: he missed that one minute in the morning. Just to see her meant something. Even when she didn't know he was there.

The morning after the dance Sunder was at his window waiting, as always. And then as he watched, he saw a man-the same stranger come up and look for Roopa, Obviously it was a pre-planned meeting for Roopa was ready and waiting for him. She smiled at him, slowly and lazily and surely.

But Sunder couldn't watch. Suddenly he couldn't see very well and he had to look down at his book until his eyes cleared. And when he looked again they were gone. He felt that the sun had gone and winter come in one moment. . He went running down in
his shirt sleeves as if he had gone mad.

And for an hour he went up and down the hill sides round Hariyal, looking for them although he had no idea as to why he was doing it. At last he gave it up and went home again, flinging bimself down on the bed and lying there until it was dark and the rage of jealousy inside him drove him out into the street again.

Sunder wasn't out long before he heard all about the stranger who had come for Roopa in the morning, laying his hand on her in broad daylight in open street and she letting him. The slut, they said, we always knew she was that kind of a girl; we always knew it. And Sunder didn't know whether he wanted to kill them for saying it. or Roopa for giving them reason, or himself for misery.

During the next weeks it became the scandal: Roopa and the stranger. Sunder hated this stranger and his good town-bought clothes and the sound of his voice, very loud and confident. And Sunder had enough opportunity for seeing him and hearing him and hating him because he almost lived in Hariyal and he met Roopa.

From his village a few miles off the stranger would be over all times of the day and evening on one excuse or another; to see a farm or cow, or meet a man or just plain and straight to meet Roopa.

Sunder never spoke to Roopa any more. Nor because he was proud but
because he never got a chance. So he only watched her from his window, Enowing that half the village was watching her also and wishing her ill.

Roopa hadn't been going with the stranger a month before the story started going around that he was married already; that he was engaged to a girl back in Sunaput : or that anyway he hadn't the slightest intention of marrying Roopa. And the last story Sunder believed.

As the weeks went by the tension was building; the people watching Roopa and the stranger, watching for her to come to harm, for the man to leave her ruined and broken.

Sunder knew too, but in a kind of sick despair. Because he not only knew it was coming, but he knew that Roopa knew as well. And he watched her trying not to show it, trying not to believe it, as she walked with her fine-smiling lover.

And then the day came. Quite suddenly. without any warning, as Roopa was standing in the street in the morning sunshine, waiting for the stranger to come. He came swinging down the hill side, nothing in his face that was different to any other morning, his eyes smiling and lazy. He nodded to a few people he knew and coming up to Roppa chucked her under the chin with his hand, the way you would play with a child or a dog. It was because he wanted to show the men that she belonged to him.

It sounds a trifling sort of thing to have started the quarrel between a man and a girl, but it was what was behind it that really made the trouble; the knowledge she had of how little she meant to him.

One of the loafers by the wall sniggered and even from where Sunder was he could see Roopa colouring. She struck his hand down and said somthing that made the men laugh out aloud. Sunder found out later that it was then that the stranger told her he was leaving the next day, and he wouldn't be bothering about seeing her again (just the way everyone was expecting). But now he threw it at her.

Sunder saw her go white, and for a long moment she stood quite still, her eyes almost shut. And then she hit him, with a full swing of her open hand that would have knocked most men down. It rang across the street like a gun-shot and he nearly fell, staggering back to keep his balance.

The loafers stiffened against the wall, and a dozen curtains quivered in the windows along the street. This was the moment they had been waiting for. This was the moment when Roopa's pride and swagger would be broken. But they hoped he would strike her back before he left her, so that they could have the symbol as well as the reality.

He did strike her, sliding across the road lithely, lifting his hand and chopping her down with a horrible, chunky little blow that knocked her in a
sprawl at his feet, her hair tumbling in the dust, her arms flung sideways.

He stirred her with his foot and laughed, one hand to his own cheek where she had hit him, and he grinned round at the men watching. Grace must be given to them for some looked uncomfortable, but none of them stirred-none of them said a word that a stranger had struck a girl of their own village in front of them.

Sunder meanwhile couldn't see or think for a moment, and when he came to himself he was halfway down the stairs with a blackthorn stick in his hand. But he didn't run. He was too sure to need to run. He was going to break the stranger. Break him as he had broken Roopa.

Sunder walked quite slowly, limping up the street, looking at the stranger's wide shoulders, and the one hand at his cheek, and at Roopa gathering herself onto her knees, close to his feet, not being able to believe that there was no one who would so much as lift his voice for her. Sunder was nearly behind her and she never saw him coming,

Neither did the stranger at first. It were the men along the wall who saw Sunder, and their eyes turning told the stranger it was not over yet.
"Get a stick", said the stranger and one of the men that had a blackthorn threw it to him. There was more fighting in those days and neither of the men needed to say anything.

The stranger kicked Roopa away the way you would kick a kitten out of your way, and swung the stick in his two hands, getting the weight of it. The street quietly filled up with men. No women, but they were watching from their windows. The only woman in the street was Roopa.

They moved into the middle of the ring, each with a blackthorn stick and the knowledge that only one would be walking when the fight was over.

The stranger was looking very confident, because, as has been said, Sunder was not a big man and had a limp. But because of those things Sunder had needed to learn how to fight with his brain as well as his hands. And also Sunder was fighting for the one thing he cared about on the earth. The stranger was just fighting because he had to.

They moved around, slowly at first and then faster, swinging their bodies almost as in a ritual, like dancers instead of fighters. But that was to get the feel of the ground and each other.

And then suddenly, the stranger broke the rhythm jumping zigzag, once left, once right, and both times forward, his stick swinging in a short hooking circle towards Sunder's head. Sunder shifted his grip, one hand up and one down along the length of the stick, breaking the force of the stranger's blow with it and then jabbing at his face with the point. It broke one of his teeth, and some of the men watching hissed as they saw the blood.

The hiss distracted Sunder off guard for a fraction of a second and in that instant he caught Sunder off guard.

Sunder saw his stick coming, low and sweeping at the bad knee, and Sunder knew that if it hit him it was the end. Sunder was off balance to jump, and he wouldn't parry, the way Sunder was holding his own stick. All Sunder would do was to sink down and take the weight of the blow on his hip.

It struck like a log falling, and Sunder thought he was finished after all, that he couldn't straighten again. Sunder's hip felt as if it had broken, and he saw the stranger's stick lifting over his head, black and heavy against the blue of the sky. But the stranger lifted it too high; waited a shade too long. He glanced round the ring for admiration. And when the stick came Sunder was ready.

Sunder moved sideways, and it hit the ground beside him almost bard enough to splinter it, and at the same instant Sunder hit his ankle, once, twice, fast and sure, not looking to any one for admiration but only intent on breaking him, breaking him as he had broken Roopa.

The stranger shrieked and stumbled, and Sunder hit him on the side of the knee and then the elbow so that he dropped his stick and flung up his hands. Sunder hit him on his head, and across his back, and he fell down on the ground covering his head with his arms, kneeling slowly as if he was going to say his prayers.

You can hurt even a big man with a blackthorn stick. Hurt him terribly, if you know how to use it and where to hit.

He knelt down like a tree falling, and by the grace of these things he knelt down in front of Roopa.

She herself was still kneeling, only half risen from where he had sent her sprawling when the fight started. Sunder hit him a last time and he fell down on his face in the dust, the blood running in a thin crimson ribbon out of his mouth.
"Is this your man" Sunder said to her. "Is this you lover ?" And she looked at him very strangely across the fallen bulk of the great hero, the woman-pleaser.
"Is he yours?" Sunder repeated, half afraid that out of some idiotic pride she would cling to the man just because he had fallen.

But slowly, very slowly, she shook her head, and smiled, a queer, heartbroken smile, as if, quite suddenly, she had learnt a lot of things, and found them too sad for weeping. But all she said was Sunder's name, very softly, so that no one in the crowd about them could hear.

Sunder lifted her to her feet, and they walked down the street together, the ring opening for them. And Sunder tried not to limp, tried not to know what they were thinking, that Rcopa was a girl who'd go with the man who beat her lover, just because
he beat her lover. But even though Sunder knew what they were thinking he didn't really care, because he knew it wasn't true. He knew it from the way she smiled at him, the way she said his name.

And suddenly Sunder laughed, thinking of what they would say. He laughed aloud, for all the pain in his hip and the shame of everything.

And beside him Roopa threw ba her head and laughed. She laughed herself, laughed because the sun w shining, laughed because they b found each other.

They walked like royalty dou the length to his mother's house, 1 limping and Roopa with her bruis face and dusty clothes, and the san proud walk like royalty; I tell you lit Royalty.

## DOOMSDAY

BY R. C. DUTT
Under the graceful minaret, He waxed poetic.
He eulogized.
He reminisced.
Yet, an uncertain air
Hung :
It turned our minds -
Our thoughts-
A weathervane we were-
In unison.
Something amiss ?
Hollowly (O so hollowly)
We echoed-
In unison.
'twas like silver bells atinkling
His speech
Yet, perturbed were we-
In unison-again.
He seem'd not to notice:
Immersed as he was
In an ocean of retrospection
He talked.
While the moon arc'd
And seem'd to settle
(Almost)
On the graceful minaret.
Our universe exploded-
'twas not the Moon:
'twas a cosmic fireball.
( 8 )

# A Disappointment 

Phulwanta Lal, B.A. (Hons) I Year

T was early morning. I sat by the 1 window in my little room, looking out towards the east, which was coming alive and seemed to be pulsating as the rays of the sun pierced the dark and withdrew only to re-appear again with greater strength. A very pale blue and violet began to colour the sky. It was dawn and she was beautiful! I sat quietly fascinated by the solitude of the early morning and my thoughts were so very humble as I watched the glory of nature.

This peace was shattered by the ringing of the door bell. As I got up to open the door, I wondered who it could be. I came face to face with a postman, who had an express letter for me. I hurriedly signed the receipt and tore open the letter. I had won the first prize in the painting competition, I had entered for it a month ago and I was to be the lucky one to tour Europe! I ran around the house with a joy no words would ever be able to express. I ran to the kitchen, embraced my mother and kissed her while she looked on bewildered, unable to understand my sudden happiness. I gave the letter to my father to read it aloud to everybody. He read:
"Dear Miss Lal,
It is a pleasure to inform you that
you have won the painting competition and, of course, a tour of Europe. Could you please drop in on Monday, the 27 th of this month at our office for further information.

Yours sincerely, Joseph H. Stanley"

What do you think was my next action? I hurried to my bed room and dressed in my best clothes. I rang up for a taxi and set off for my best friend's house who was living about four miles away from my place. In my excitement I completely forgot to pay off the taxi driver, who had to run after me to get his money.

As soon as I saw my friend's face I started pouring my joy out to her without even wishing her good morning. She was almost as happy as me. I forced her to get dressed quickly and took her to the 'Twiga Grill', which was supposed to be the best restaurant in town, and gave her a treat.

Later, after dropping her off, I went home, and as I did not feel like having my lunch I soon started writing letters to my pen friends in Europe telling them about my coming tour.

In the evening $I$ went to one of the bookshops and bought a book
called 'Teach yourself French', and all the way back I tried to cram some words like 'thank you', 'please' 'yes' and 'no'.

How I wished that it was Monday so that I could get some more information about when I was supposed to leave and on which flight I was booked. After finishing my dimner quickly I lay down in my bed. and was soon asleep. That night I had a beautiful dream. In my dream I started seeing Rome, Paris, the Tivoli in Denmark, and the fjords of Norway! How I wished to sit on the ghost train and have fun with my friends. I imagined myself on the tops of white mountains of Switzerland trying to learn skiing and having lot of falls,

Monday did come at last. I think on that day I was the first one to get up. I quickly had a bath and dressed. I was so early that I bad to walk about for a long time before it was really time for me to go. It took about half an hour to reach the office. There I was told to wait in the waiting room for about ten minutes.

The ten minutes seemed like ten hours to me. Finally, I was asked to come in. I saw a middle-aged man sitting at his table. I showed the letter to him. He went through it about five times. My heart started beating fast. Was he having any second thoughts about it? He looked up and smiled and I smiled back as
sweetly as I could. Then he opened a drawer and took a few paintings out of it. He showed one painting to me and said. "That's your painting which has won the first prize. I congratulate you." I kept staring at the painting, for it was, indeed, a beautiful one but it was not mine. I told the man that the picture he was holding had not been painted by me. He also seemed bewildered at this and quickly looked at the back of the painting, where we were supposed to write our names and addresses. He read the name as Miss Lal from Bombay.

He took out all the paintings from the drawer and I picked out mine. He told me that my picture had won the second prize and that meant I would be getting $a^{\text {a }}$ hundred rupees. He then apologized for the silly mistake they had made and told me that the hundred rupees would soon be sent to me.

Reader, I do not know if you have ever experienced a sudden shocking disappointment, but this was the first and the worst I had. I left his office with tears in my eyes, all my hopes and plans shattered.

The next day $I$ received my hundred rupees, for which I simply did not care. I wrote to my penfriends telling them not to expect me, and I felt very sad and lonely for the rest of the day. I pray no one ever experiences such a disappointment as I did on that day.

## The College Union



Principal (Dr.) Amba Prasad, the Judges and the participants in the Inter-College Declamation Contest for the Mehr Chand Khanna Trophy.


A scene from the one-act play: 'Post-Graduate' showing Ganguli and Uma on the stage

Inter-College Youth Festival 1964-65


Our Group Song Troupe which won the 3rd place


Our Group-Dance team with the Principal, the Composer \& Shri J.K. Jain, Adviser of the College Union

## Kamlesh Kumar Rattan B.A. (Fass) 2nd year

"Nicknames stick to people and the most ridiculous are the most adhesive" If you are unlucky enough $\omega$ get a nickname you had better learn to live with it. Try to shake it off and it will sink deeper into you and burn into your very soul.

A probe into the origin of nicknames is sometimes rewarding. Many a nickname can be traced to schools and colleges. I had a classmate who was nicknamed "Bullock". In appearance, character and temperawent he was as different from a bullock as chalk is from cheese. Why then was he so nicknamed? I made some patient research into its origin. I found out that his brothers and, in fact all the male members of his family were similarly nicknamed and that it was a legacy bequeathed by his grandfather.

The grandfather in his school days had wrongly used in a written composition the expression "bullock in a china shop". The class teacher had read it out to the class in order to point out that the correct word was "bull" and not "bullock". The class, however, reacted in quite a different way. They howled hilariously and dubbed the author a "bullock". And the name stuck to the unsuspecting author and his would-be progeny!.

Some people are better known by their nicknames than their names.

At the present, in my college, I have a. classmate whose nickname is 'Aaloo' (Potato). I do not know about his nickname's story, but he is famous in our college by his nickname and very few students know his real name.

I remember an incident which continues to surprise me.

The other day a youngish looking boy, dressed in well-pressed Dacron trousers and crepe Terylene shirt, met me on the road. Walking up to me with a broad smile, he started shaking my hand heartily. I was nonplussed. "I see you do not remember me, eh ? I am Basant", he said and gave me his initials. But I was no wiser. "I am Mr. Fox Basant, he explained laughing. The word "Mr. Fox" rang an unmistakable bell in the remote recesses of my memory. Sure enough I remembered we had been together at school.

There are people who fly into tantrums at the mere mention of theit nicknames. Such an attitude does not help. It only makes matters worse and is a source of misery for them. What happened to Rajender, who was nicknamed 'Hercules', is a case in point. He is a young boy and having very small height but due to his physical appearance he is thinking himself just equal
to 'Hercules'. His friends therefore call him by his nickname "Hercules". unlike "Mr Fox Basant", "Hercules Rajender" has not learnt to live with his nickname.

While on the subject of nicknames I would not be true to myself if I were to hide the fact that I myself am the victim of a nickname. I am nicknamed "Shastri"; not of course for any Shastriship. On my part it came about like this. My friends used to call me by this nickname due to my last year's House Examina-
tions in which in Political Science when I was receiving my answer book which was distributed by our teacher, suddenly I heard a voice from the back banches of our class; that he is 'Shastri'. See how devious is the process of the evolution of nicknames.

Well, whether you are nicknamed "Bullock", Mr. Fox", "Shastri" or anything else, my advice to you is to reconcile yourself to it. No matter what you do, the nickname has come to stay.

## 'Power shortage in the Capital'

## Sunil Gupta, Pre-Medical 2nd year

"Good-day friends. We will now play to you.......chai, splutter, Kov, splutter, y's, splutter splutter." A laugh broke through the room as the radio spluttered into quietude. Killing, that is what it is. Poor Tchaikovsky's name has been distorted to 'chai-covy' (chai-coffee or Tea and coffee). Well, the power shortage is certainly creating some humour! Of course, the only suggestion is, friends tune in your radio only when you are certain that the power supply is not threatened.

Do you know when a housewife, who owns electrical appliances, is completely fed up with them ? I will
not pester you to answer for the heat as I can realize, may have affected your nerves, so I will tell you, it is when there is no power supply. It is most distressing to be unable to drink cold water. Mother comes saying, 'why are you wasting the little water that is there in the 'frige' ? I suppose you want water which has been cooled with that 'rat and lizard frozen ice'. "No cold mangoes and apples for the unfortunate people who own that their pet hobby is horse eating. The 'cokestruck' people of the capital are sore for there are no cold 'cokes' to calm their frayed nerves.

Naturally, everyone is getting rather short-tempered with the fans. They choose the most odd times to go off. Right when you are in the middle of your beauty-slumber there comes the 'cut', The electricity goes off, as though saying "that's enough for today." The unpleasant whirring of the fans is now music for the ear. Everyone is sulky, sarcastic and you get a biting retort for the most mild question.

It is most disheartening to have to wait to read a book which interests you, just because the light has called it a day. If you suggest reading by a candle light, Oh! just like the people did in the days gone by !, then let me tell you, that you are under the effect of an unholy delusion, for reading by candle light is no more romantic than spending rest of your life in a village. Reading a detective story will not be thrilling if a gust of wind blows off the candle. You are likely to suspect then, that criminals are after you and that there is no hope of escape, for your legs have turned into dead posts.

The damn electric cut! Why, even
the iron is useless and the people, in cluding you, are suffering extremely. No ironed dresses, sarees or trousers. It seems we will have to adopt some new fashion. The idea of becoming those people who are torn between fashion and their so called conventionalities, is not quite suitable for the people of Delhi. Fate is rather hard. We used to pity our forefathers before, but it is they who have the laugh at us now, (how irritating!) for we have to go back to those bad old days of ironing with those 'coal-irons' which occupied a place in every foreigner's drawing room.

Feople are beginning to pity foreigners now, but I am very much pleased with their discomfort, Atleast, they cannot turn on their air-conditioners, the noise of which is most disgusting to me. Before their sound used to distrub me when I was asleep but now I feel relieved to see them disgusted with life. How exciting the electricity has come. So I must go and get myself the long-awaited glass of cold water, and that is the 'Swan-Lake' being played on the radio. So good-bye friends till we meet here again!
"I expect to pass through this world but once. Any good, therefore, that $I$ can do, or any kindness that I can show to any fell ow creature, let me do it now. Let me not defer or neglect it, for I shall not pass this way again."
(Oscar Wilde)
( 33 )

# Writing an Article for the College Magagine 

K. Raj Lakshmi B A. (Hons.) English Ist year

Is it not Bacon who wrote, "Reading maketh a full man, conference a ready man, writing an exact man.'

Whenever I happened to read some interesting article or story, I used to feel the thrill of writing similar articles myself, and used to amuse myself with the idea of becoming a writer one of these days. Perhaps, I was heading for something too ambitious!

However, when it was announced on the college notice board that "contributions for the college magazine are invited from all students", the urge in me to write became so strong, that I decided to produce something. From that moment my mind was not at rest and was wandering hither and thither in trying to choose a suitable subject, and also to know as to how to accomplish it within the specified time.

I remembered my uncle who used to supply witty and funny articles to many dailies and weeklies and all his articles used to be based on very simple day to day matters. I had seen him often walking up and down with his hands locked behind him. Perhaps, it was his way of getting ideas. Now I too was in need of ideas. So I began to pace up and down in the verandah of my house with my hands on my back.

To what extent this helped my uncle in producing the ideas, I know not, but to me it was all in vain. I was still where I was, with no advancement whatsoever.

My father noticed me walking here and there and now and then scribbling something and when he enquired about it, $I$ told him about my ingenious way of producing an article for my college magazine. He burst into laughter at my idea and said that writing comes only by practice and not by other methods.

He quoted the following from Pope:
"True ease in writing comes from art, not chance;
As those move easiest who have learned to dance"

And the following from Shakespeare:
"Experience is by industry achieved,
And perfected by swift course of time.'

He advised me that as only "practice maketh a man perfect" I, should try to make some sincere efforts to achieve my object.

I, therefore, restarted my thinking and was so much absorbed in the pre-
paration that I couldn't even hear my mother's call for dinner. She was a Litter critical of my attempt and advised me that I should refer to some good books, on the subject and then ty to collect the points for my article.

Out of the many books I consulted there was one with the title "How to become a Writer Overnight", It was just like a tonic for a sick man, but a perusal of some of the directions proved how much time and patience I would have to have at my disposal betore J attempted to write something.

The writer started advising: "do not say, 'commence' for 'begin' or 'request' for 'ask' or 'veracious' for 'true' or utilize' for 'use' and as far as possible to use short words for long ones.

Then he went on to say that one should be careful in using the correct words in the correct place to avoid misrepresentation of ideas and quoted the following example.
"I will die, and no one shall help me," and "I shall die, and no one will help me." I am sure that my readers will be able to find the difference between the two.

He then stressed the importance of punctuation and gave the following example to demonstrate how a comma could change the very sense of the sentence.
"Release him, not bang him."
"Release him not, bang him".
Thus I came to realize how difficult a job it was to write. My younger sister dropped in just then and laughed at the plight I was in. But when she remarked that my contributing something appeared to her as a fantastic nonsense, I couldn't but agree with her.

Nevertheless, I didn't lose heart and determined to produce something and here it goes. If in your attempt to read, you bappen to notice any invisible scribbling or an ununderstandable character, I admit that they are, of course, the contributions from $m y$ little brother who is just three years old.

Thus with the indirect help of every one this article was made possible. I only hope that the editor also will contribute his share as well, by allowing some space for this in the college magazine,

Or, I am too ambitious.
"Ideas are, in truth, forces. Infinite too, is the power of personality. A union of the two always makes history."

## ABOUT OURSELVES

We welcome our new readers who have joined the college for the first time. We hope that they are thoroughly enjoying their stay here and benefiting immensely, intellectually, culturally and socially. We need not say that the columns of Desh, our college magazine, are readily available to them for developing their faculty of self-expression and for exchanging thoughts and ideas which they may find interesting or useful. It is heartening to know that they always look forward to reading the issues of Desh but it is only possible if some of them take the trouble to write articles for the magazine. It is 'not enough to read what others write; others must read what you write. Bacon said: Reading maketh a full main; conference a ready man; and writing an exact man.'

We wish to plead with our readers not to fight shy of writing on any subject which may interest them. Let them write short articles : the shorter, the better. All that we need to emphasize is that what they write must be their own and not copied.

We have tried to make the present issue of Desh as much a success as we possibly could; We were handicapped by the lack of good reading material, as the contributions from the students were not encouraging. We hope to receive a better response from them to our invitation for contributions for the next issue. We hope our readers
liked the Desh Supplement:. Homage to Rashtrapriya Jawaharlal Nehru.' It was our fifth supplement.

We, have added a new feature: the: 'NCC Section'. It is for our NCC Officers and Cadets to keep it going.

## 'Endeavour'

We are very happy to welcome the first issue of 'Endeavour'-the research-cum-study journal of the college. The articles in the present number are both scholarly and thou-ght-provoking. We are confident that 'Endeavour' will continue to flourish under the able editorship of Shri K. C. Kanda and the patronage of our Principal, Dr. Amba Prasad.

We, however, must express our wish that members of the Staff will not withdraw their co-operation from Desh and continue to write for its pages as hitherto. Anything that does not savour of 'research or study' will be good enough for us because we are sure, it will be more delicious and easy to digest. We have not the least fear that this our new 'cousin' will prove itself to be a 'usurping cousin.' But, then, you never know.'

## The Staff

We offer our heartiest congratulations to Mrs. N. Bawa and Mrs. Raj Kumari Parshad on the birth of their
daughters. They say that 'birds of a feather flock together'. Mrs. Bawa's example was followed by Mrs. Parshad. We hope that our male teachers will prove to be 'birds' of a different 'feather'; if for no other reason than for the sake of variety, They must keep company with Dr. Ahluwalia and Shri Om Prakash Kohli. Girls are welcome but their births must be fairly punctuated with boys. A boy and a girl, and a girl and a boy-that is the pattern we like: in the language of architecture, the mosaic pattern.

We offer our congratulations to Shri V. N. Khanna on his appointment as the College Bursar in place of Shri S. M. Jhangiani who resigned due to pressure of academic work. We wish him success.

Shri M. L. Sanduja. Lecturer in Chemistry, and Shri B. P.Saxena, Lecturer in Zoology, resigned their posts to go to the United States of America for higher studies in their respective subjects. We wish them the best of luck.

Dr. R. N. Kaul, Lecturer in Mathematics, has gone on one year's leave on a teaching cum research assignment in the University of California. We have no doubt that he will return to us with a new feather in his cap.

Dr. C, L. Nahal. Lecturer in English, who had gone on leave and joined the Department of English in the Post-Graduate Institute (Evening) of the University of Delhi, resigned his post in the college. He has our
best wishes for a successful career there.

There have been a number of changes in the Staff. We welcome all the ladies and gentlemen who have joined the ranks of our esteemed teachers and we bid good-bye and wish godspeed to all those who have gone to 'fresh woods, and pastures new.'

The following persons have joined the college :-

Department of English<br>Shri K. R. Jain<br>Shri P. L. Sharma<br>Shri S. K. Mukerji<br>Miss B. Majumdar<br>Department of Chemistry<br>Shri P. S. Relan<br>Shri S. N. Gupta<br>Shri K. C. Kapoor<br>\section*{Department of Hindi}<br>Shri S. N. Singh<br>\section*{Department of Political Science}<br>Shri Krishan Lal<br>Shri Y. K. Puri<br>Department of Sanskrit<br>Shri R. S. Vats<br>Department of Economics<br>Shri P. L. Goyal<br>Shri R. N. Bansal<br>Shri C. M. Gupta<br>Department of Physics<br>Shri B. P. Gupta

Department of Mathematics
Miss Manju Mathur
Shri S. C. Wason
Department of Botany
Miss Bina Rastogi
Miss Manju Gupta
The following persons have left the college:-

Sarvshri S. P. Bedi and S. K, Mukerji (English); Shri M. L. Sanduja (Chemistry); Mrs. Usha Chowdhry and Shri C. L. Gupta (Economics); Miss Bina Rastogi (Botany) and Shri B. P. Saxena (Zoology).

## The College Office

Shri Amar Nath, our Cashier, has been applinted Head Clerk in place of Shri B. S. Aggarwal who resigned his post. Shri D. P. Agarwal has been appointed Senior Clerk in place of Shri J. K. Suri who resigned his post. Shri S. K. Goyal has been appointed Cashier. We congratulate these gentlemen and wish them the best of luck.

## Admissions

Admissions to the college during the year 1964-65 reached the everhighest figure of 1083 : Boys 516 and Women 567. For the first time in the history of the college the number of women students is higher than that of the boys. If statistics are any guide male members of the Staff may in time to come have to yield place to women teachers. Their number is already on the increase. We, on our part, are
too willing to vacate the editorial chairs to women editors. We have had a long 'innings' ; let women come and rule the roost with their soft pens.

## The Collage Union

Shri J.K. Jain, Lecturer in English, took ofer the advisership of the College Union from Shri V. N. Kanna, The College accounts claimed Shri V.N. Khanna as the Bursar. During his term from 1962-64, he looked after the Union with zeal and competence. Shri Jain is full of ideas. We wish him the best of luck in this august office.

The present year began, as in the past, with elections for the College Union and ten Supreme Councillors. The hectic canvassing by the candidates and their supporters, the preelection speeches, the subsequent Question-and-Answer session, the wordy duels between the rival par-ties-all enlivened the college atmosphere for quite a few days. The elections were held on the 7th August, 1964. The following were elected office-bearers of the College Union and class Representatives:

| President | Yug Prakash Dar, <br>  <br> Bice-President <br>  <br> Becretary |
| :--- | :--- |
| Jugal Kishore Dogra, <br> B. Sc. II Year |  |
| Asstt. Secretary | Om Prakash Kohli, <br> B. A. II Year <br> II Year Gehani B. A. |

The Political Science Association
(Mock Session of the General Assembly of the United Nations)


Shri M. M. Verma (President) addressing the Assembly


Some of the students who participated in the Mock Session


Mrs. Chauhan (Evening Classes) giving away the
Deshbandhu Cup to the St. Stephen's College team.

Class Representatives
B. A. (Pass \&

Hons) III Year. Tribhuvan Kaul, B. A. III
-do-II Year Yashwant Singh, B. A. II
-do- I Year Ramesh Sabharwal B. A. I
B. Sc. (Genl. \& Prakash Badlani, Hons) III Year. B. Sc. III
-do- II Year. Satish Kumar, B. Sc. II
-do- I Year. Ramesh Kumar, B. Sc. l
Pre-Medical
II Year Naresh Chandra, Pre Med. II

The following were elected members of the Supreme Council of the Delhi University Students' Union :-

1. Kumari Prem Kanta B. A. (Hons) III Year
2. Jugal Kishore Dogra B.Sc. II Year
3. Vinod Sethi B.A. (Hons) II Year
4. Brij Mohn Dara B. A. II Year
5. Anoop Singh B. A. III Year
6. Bhim Sen Mittal B. A. (Hons)

III Year
7. Surjit Singh Choudhry B. A. (Hons) II Year
8. R. C. Grover B, Sc. III Year
9. Swadesh Kumar Joshi B.A. III Year
10. Narinder Sharma B.A. (Hons) III Year

The Principal nominated the following to the Union Executive for the year 1964-6 -

1. Shri R. K. Sud
2. Shri S. M. Jhangiani
3. Mrs, M. Thomas
4. Shri Kaushal Kumar
5. Shri O. P. Kohli
6. Sudershan Maini, B. A. III Year,
7. S. P. Ganguli, B. A. (Hons) III Year,
8. Y. S. Bisht, B. A. III Year,
9. Indira Sharma, B. A, (Hons) III Year,
10. Suman Bagga, B. Sc. III Year,

Shri V. N. Khanna (Bursar) and Shyamal Bagchee (Student-Editor) were put on the Union Executive (Ex-officio).

Immediately after the elections, the Union started functioning with great vigour. The first meeting of the Union Executive was held on the 22nd August. 1964. The following important decisions were taken under the chairmanship of the Principal :

1. A Debating Society, to train our students in the art of public speaking. discussion and debating will be instituted under tbe College Union.
2 A Mock-Parliament, to acquaint our students will be added to the list of functions to be arranged by the College Union,
2. The Deshbandhu Day will henceforth be called the Commemoration Day, which will be dedicated to the memory of all the valiant martyrs who lay down their precious lives for the freedom of our country.

The Union Annual Hindi Prize Debate (Local) was held on 1st September, 1964. The subject of the debate was as follows:
"इस सदन के मत में ग्रनिवार्यं संनिक शिक्षा लाभฐद नहीं है ।"

Fourteen students spoke on this occasion. Surinder and Abhey of B.A. (Hons) Economics II year were awarded the first and the second prize respectively. The following constituted the panel of judges;

1. Shri L, M. Sharma,
2. Shri R. K. Sharma,
3. Dr M. M. Ahluwalia,

The Union Annual English Prize Debate (Local) was held on the 4th September, 1964. The subject of the debate was as follows:
"In the Opinion of this House, boys and girls should be encouraged to meet each other freely."

Sixteen speakers took part in the debate. The first prize went to Miss Dharitri Ranga of B. A. (Hons) English I Year; the second was shared by Pradeep Banerjee and S. P. Ganguli of B. A. (Hons) Economics III Year.

The following constituted the panel of judges:

1. Shri Kaushal Kumar,
2. Shri R. C. Pillai,
3. Shri Y. P. Dhawan,

Both the debates aroused a great deal of enthusiasm and interest. They were well-attended.

The Fourth Inter-College Declamation Contest for the Mehr Chand Khanna Trophy was held on the 24th September, 1964. Speakers from eleven Colleges participated. Our College was represented by Yug Prakash Dar and Ashok Behari Mathur.

The trophy was won by students of the Lady Shri Ram College. The first ard third prizes went to Miss Ranjana and Miss Bina of the same college and the second to P. Eashwar of the Ram LaI Anand College.

The panel of judges consisted of the following members:

1. Rai Bahadur, H. C. Kathpalia, former Principal, Deshbandhu College,
2. Shri U.R. Rao, Editor, Collected Works of Mahatma Gandhi.
3. Mrs. Roy, Department of English, Lady Shri Ram Collage.

The Union Inaugural Day celebrations took place on October 1, 1964, in a pandal on the Hockey-Ground. Shri P. N. Kirpal, Secretary Ministry of Education, and Chairman, Board of Administration, Desbbandhu College, kindly addressed the staff and students, Speaking on this occasion, he said, "I do not agree with those who say that the Students' Unions in the Universities and Colleges are undesirable as they are the source of much indiscipline these days. I am of opinion that these Unions, if run properly and under proper surveilance, prove highly useful. Young students from various parts of the country and from various strata of society learn to
mix together, discuss matters of common interest and find out ways and means to meet situations which intrigue them and finally bring about, in an imperceptible manner, national integration. Cultural programmes serve to bring out the artistic talent that they possess and social programmes help to provide traininig in leadership and initiative. Debates and declamation contests not only provide forums for discussions but also pave the way to public speaking and ultimately to national assemblies and the Parliament." He congratulated the organizers of the programme of the cultural programme.

Besides, a cultural show, consisting of a Group-dance a Group-Song, a One-Act Play ('Post-Graduate'), solo items in light vocal Music, was also presented. All these items were entered by our college for the InterCollege Youth Festival organized by the Delhi University. The functions drew almost all the students of the College who enjoyed it very much.

A sort of 'barakhana' for the staff and the Union Executive. studentartists, volunteers and N. C. C. Cadets was also held to mark the celebration.

The Twelfth Inter-College Debate for the Deshbandhu Cup was held on the 6th November, 1964 . The subject of the debate was: "In the opinion of this House if India wishes to sruvive vis-a-vis China, she must develop her own nuclear deterrent." The response from different colleges was not very encouraging, the reason, perhaps, being, that a number of cultural
events took place in different colleges on the same day. Students from sil colleges took part. Our college wat represented by Dharitri Ranga. anc Ashok Bihari Mathur.

The Cup was claimed for the third successive year by the St. Stephen's College. The first and third prizes went to Mr. Awdesh Kumar and Mr. J. Harinarayan of the same college and the second prize to Ashok Bihari Mathur of our college.

Shri P. N. Dar, from the All India Radio, Dr. C. L. Nahal, Reader in English, Institute of Post-Graduate Studies, (Evening) University of Delhi, and Mrs. Chauhan. Lecturer in English; Deshbandhu College (Evening) formed the panel of judges

Besides holding debates at our own college, the Union has been sending speakers to other colleges, such as the Indian Institute of Technology, the Shri Ram College of Commerce, the Lady Shri Ram College, to participate in Debates.

The Union helped the Social Service League in making collections for the Teachers' Day on 5th September, 1964.

The Union arranged exhibitions for the benefit of our students. The first exhibition was put up by the U.S.I. S. Cheap editions of textbooks were displayed.

The first instalment, namely, pic-ture-panels on 'Youth in Britain' Show from 10 th to 13 th November, 1964
was followed hy exhibits on 'Women in Britain', 'Meet the British', 'Shakespeare. Besides, we have received booklets and pamphelets on the above subjects to be distributed to students.

We wish to thanks the U.S.I.S. and the British High Commission most sincerely for the above ventures, that have proved of indubitable value.

The Union, this year, has been very active: in bringing to the notice of the Principal the difficulties and problems of students relating to the Canteen, the Library, and the D.T.U. Service. For this purpose the Union has held its meetings from time to time. These meetings have promoted an active interest in the student-problems in the Union officer-bearers and the class-Representatives and given them opportunities for expression of their views in a reasoned and responsible manner.

Towards the end of the term; Shri P. Goyal, Lecturer in Economics, was also associated with Shri J. K. Jain, by the Principal. Shri Goyal is, like Shri J. K. Jain, full of ideas and enthusiasm. We hope that his association with the Union will prove extremely beneficial.

The Union has, this year, acquired a cabin for its office. It is still to be properly furnished.

## The Inter-College Youth Festival

Our college participated in four events of the Inter-College Youth

Festival Competition, held in September this year under the auspices of the University of Delhi. In the oneact play competition we presented a play in Hindustani: 'Post-Graduate'. It was an ably written satitical drama, centring round the problem of unemployment among the university educated. Judging from the appreciative response of the audience of the Miranda House, where the play was staged, one could boldly affirm that it was an undoubted success. S. P. Ganguly and Tribhuwan Kaul who acted the Post-Graduate and the Scientist respectively, gave outstanding performance. The other members of the cast were: Uma Verma, S. R. Gogia, Ashok Talwar, Satinder Vij, Satish Grover and Harikishen.

It is a pleasure to record that our Group Song won the third place in the University. It was a patriotic song, skilfully composed and inspiringly sung by our troupe which consisted of the following students: Sarojini, Tejindra, Uma, Geeta, Harvinder Singh. Ashok, Harish, Radhey Shyma (Evening Clases) and Bharadwaj.

We also entered our team for the Group Dance competition. We chose the 'Panghat' folk dance and our troupe consisted wholly of girl students, who in their colourful costumes. painted 'mutkies' and jingling, measured steps, effectively recreated the typical 'Panghat' scene of Brindavan region. The following students participated: Varsha, Bhariti, Veena, Bela, Prem Lata, Surindra; Dharitrí and Rajesh.

Among the solo items we competed only for the light-classical music, and our singers: Sarojini Kapur and Tejindra Kaur, gave a give account of their musical talent.

The entire programme was repeated in the college on the occasion of the Students Union Inauguration ceremony on the 1st of October, 1964. The Programme was prepared and produced under the active advice and supervision of Mrs. M. Thomas, Shri K. C. Canda and Shri J. K. Jain.

We congratulate all the performers in the above mentioned competition at the university.

It gives us a great pleasure to announce that students from our College have obtained distinction in 'The All India Music \& Dance Competition' organized by the 'Nav Kala Sangam' on the 20th November, 1964.

The following students got prizes:

1. Ashok Talwar of B. A. (Hons) Maths. I Year.
'Best Vocalist of 1964"
2. Miss Tejinder Kaur of B. A. (Hons)

Pol. Science II Year.
2nd Prize in the Senior Group
(Girls)
3. Group Songs: 2nd Prize in the Senior Group.

## Paricipants :

1. H. S. Suri
2. Miss Tejinder Kaur
3. Ashok Talwar
4. Uma Chakravarty.

The Political Science Association
Adviser : Shri M. M. Verma
President: Surinder Sarhadi B. A. III Year.

Vice-President : Aruna Sharma B.A. Hons II Year

Secretary: Ramesh Ahuja
B. A. III Year.

Asstt, Secretary : Biman Chatterjee B. A. Hons. I Year

After the annual election of the Office-bearers of the Assocation it held its first function on the 4th of August, 1964. Dr, K. V. Rao, Professor and Head of the Department of Political Science of the Benaras University, gave a talk on the 'Powers of the President of India'.

Students of B.A. I Year and II Year classes were taken to the Parliament House to witness the Parliament in session,

The Mock Session of the United Nations General Assembly was held on 24 th October, 1964, with the collaboration of the UNSA. The topic for discussion was 'The International Situation'. The following participated :-

President of the 'Deshbandhu Re-
public' : Dr. Amba Prasad
President : Shri M. M. Verma
Secretary General : Harish Bhara-
dwaj.

## Delegates

| 1. The United Kingdom | Yug Prakesh Dar |
| :--- | :--- |
| 2. The United State of America | Pradeep Banerji |
| 3. France | Dharitri |
| 4. The Republic of China | Vinod Sagar |
| 5. Poland | Ashok Mathur. |
| 6. India | Narinder Sharma |
| 7. Pakistan | Tribhuwan Kaul |
| 8. The United Arab Republic | Surinder Sarhadi |
| 9. The U. S. S. R. | R. Radhakrishnan |
| 10. Canada | S. P. Ganguly |
| 11. Saudi Arabia | S. S. Chaudhari |
| 12. Indonesia | Indira Sharma |
| 13. Australia | Kapil Dev Kapoor |
| 14. Norway | Veena Chawla |
| 15. Afghanistan | Jawaharlal Wadhwa |
| 16. Iran | Kusum Sethi |
| 17. Burma | Abhaya Kumar |
| 18. Ceylon | Rama Bhandari |
| 19. Ghana | Vinod Sethi |
| 20. Yugoslavia | Ashutosh Banerjee |
| 21. India: Deputy Leader of the | Shukla. |
| Delegation. |  |

The panel of judges was constituted by Shri Frank Thakur Das (K. M. College), Shri Indra Narain Bhatnagar (Principal. Ram Lal Anand College) and Shri Labh Singh (VicePrincipal, Evening Classes). Prizes were awarded to the following :-

| Yug Prakash Dar | I Prize |
| :--- | ---: |
| Pradeep Banerji | II Prize |
| R. Radhakrishan <br> Shuk a. |  |
| III Prize |  |

Members of the Association were taken on a pincic to the Buddha Jayanti Park. Students of the Honours classes (Political Science) went to Okhla for the same purpose.

The U.S. I, S. was kind enough to arrange a film show pertaining to the United States Presidential Election on 24 October, 64.

The English Literary Society

Adviser : Shri H. S. Kakar<br>Secretary : S. K. Vij B. A. Hons<br>III Year<br>Asstt. Secretaries : Dharitri Ranga B. A. Hons I year<br>Kuldip Narayan Kaul B. A. Hons<br>II Year.

The first meeting of the English Literary Association was held on September 14, 1964. Members recited their favourite English poems. As many as ten students took part. In addition, Shri J. K. Jain regaled the audience with three of his own poems
in English. Shri R. K. Sud, addressing the members, stressed the role that literature could play in making out lives fuller and richer. He also gave valuable tips regarding the correct way of reciting poetry, using Thomas Hardy's lyric: 'Shelley's Skylark' for illustration.

## The Mathematics Association

Adviser : Shri R. L. Kakar
President: Sham Sundar Malkani
B. A. Hons III year

Secretary ; Sham Sunder B. A. Hons II Year

Asstt. Seceretary : Bhajniak Singh
B. A. Hons II Year

Class Representatives :
B. A./B. Sc. Pass : Ram Singh B.Sc II Year
B.A./B. Sc Hans : Inderjit Singh B. A. Hons II Year.

At its first meeting Dr. F.C. Auluck, Professor of Mathematical Physics, University of Delhi, delivered a discourse on 'Niathematics and Life'. He explained in a very simple and lucid manner that as Mathematics dealt with reality and life could be defind by its attribute of self-multiplication from a cell to endless numbers the biological phenomenon of life could be proved mathematically. He also dwelt on the aspects of mathematical research for the sake of research, that is, for finding a solution to a given problem for the love and joy of finding it; and secondly, application of mathematical
methods to modern science and technology.

Shri R. L. Kakar introduced the learned speaker to the audience and the Principal thanked him at the end of the meeting.

## The Planning Forum

The Annual election was held in August.

Anil Roy, Romesh Sethi, Pradip Banerji, Sarla Harplani, Kakar, B. S. Sidhu, Surjit Singh Parmar, Satoj Mohan, Santosh Bhatia and Rita Sud were elcted class representatives, who, in turn, elected the following office-bearers.

Shri S.P. Kapoor-Adviser
Pradip Banerji - President
Surjit Singh - Vice-President
B. S. Sidhu - Secretary
$\left.\begin{array}{l}\text { Saroj Mohan } \\ \text { Rita Sud }\end{array}\right\}$-Joint Secretaries
The Forum arranged a very useful talk on 'The Present Price Situation in India' by Dr, Raj Krishna of the Institute of Economic Growth on the 21st of Sept., 1964

The Forum is celebrating the National Plan week, with enthusiasm in collaboration with the Planning Forums of the University, from the 14th of November, Pandit Nehru's birthday.

## The Philosophical Association

Adviser : Mrs. M. Thomas
President: Gurpal Singh
Secretary : Sudesh Joshi
The members of the Philosophical Association arranged a talk by Dr. Baalingay, Reader in Philosophy, Delhi University, on Philosophy and Liberty. It was a very brilliant talk. He said that although many of the preoccupations of Philosophy were on full-fledged subjects in their own right, philosophy still had her own tasks. One of these was the use of language in a meticulous manner. In fact, since Plato and the Theory of Ideas, ideas or concepts such as liberty were treated as 'nouns' but meaning really lies in their use as 'verbs'.

The members went on a picnic to the Suraj Kund. Despite the heat they enjoyed it, especially as there were a number of radio singers entertaining another group. The two groups joined together and took tea in the restaurant.

## The Music Club

Adviser : Shri V. Verma
President : Harvinder Singh B. A. Hons. II year
Vice-President: Tejinder Kaur B. A. II year

Secretary : Tanuja Bannerji Pre-Medical II year
Joint Secretary : B. K. Pandal B.A. Hons. II year

## The Music Club

Ashok Talwar B.A. Hons. 1 Yr. receiving the Shield for the light vocalist of the year (!964) in the Senior Group in the 2nd All India Music and Dance Competition organized by the

Nav Kala Sangam $\rightarrow$

Tejinder Kaur B.A. Hons. II Year receiving the first prize ('n the Senior Group) for light vocal music in the All India Dance \& Music Competition organized by
 the Nav Kala Sangam


Inter-College Youth Festival $1964-65$


Scenes from our Group-dance

The Music club staged a musical evening on the 21st of September, 1964, in the college hall. A good number of participants delighted the audience with their melodious songs and lilting tunes. The songs of Harvinder Singh and Tejinder Kaur were pleasing.

Sarojini Kapur, B. A. III Year class, participated in an All India Festival of Music held at Patna in the middle of October, 64. Her songs and ghazals were much appreciated. (Also see P. 43)

The Sindhi Literary Society.
The following were elected officebearers of the Society for the year 1964-65:-
Adviser : Shri S. M. Jhangiani
Piesident : Parkash Badlani
Vice President : Sarup Gehani
Secretary: Ishwar Navani
Joint Secretary: Kaushalya Sabhnani

$$
\left.\begin{array}{c}
\text { Members } \\
\text { of the } \\
\text { Executive }
\end{array}\right\} \begin{aligned}
& \text { Veena Israni } \\
& \text { Madalsa Thadhani } \\
& \text { Khimia Khushalani } \\
& \text { Bhagwanti Bhambhani } \\
& \text { Kunti Ratwani. }
\end{aligned}
$$

A meeting of the Society was held on 23 Sept. 1964 . Parkash Badlani read a poem and Purinama Lalwani gave a Sindhi song.

A prize essay competition was held on 31st Octoder 1964. The subjects for the competition were :-

1. Students and national defence
2. Future of Sindhis in India.

The first prize was won by Asha Bijlani while the second prize was shared by Nirmala Asnani and Mira Rajani.

The annual picnic of the Society was held on Sunday the 15 th November, 1964 at Hauz Khas. Majority of the members attended the picnic and made it a success. The highlights of the picnic were 'Kho' and 'Parcel' games which were enjoyed by all. Those who contributed towards the success of the picnic were: Usha Hingorani, Sushila Sukhramani, Ishwar Navani, Sarup Gehani, Hari Tahiliani, Kaushalya Shbhnani, Nari Gulrajani, Mohan Matai, Mohan Kanuga, Bharti Karnani, Sushila Sainani, Asha Bijlani, Kamla, Gurmukh, Rajini, Hira and others.

## The Science Association

The Science Association made its start with the elections, which were held on the 8th, September, 1964. The following ware elected office-bearers of the Association.
Adviser:- Dr. R.P. Budhiraja
President:-Ashish Chakravarty
(B. Sc. III Year.)
Secretary:--Suresh Popli
(B. Sc. II Year.)

Class Representatives:
Prakash Badlani B.Sc. III Year.
Satish Kumar B.Sc. II Year.
Ramesh Chander B.Sc. I Year.
Naresh P.M. II Year.

The Association has started a series of Lectures on scientific subjects, beginning with the first lecture by Jugal Kishore Dogra of B.Sc. II Year, who spoke on Atoms for Peace on the 19th, September, 1964.

Principal Dr. Amba Prasad was also present on the occasion and he spoke a few words of encouragement to the Association.

The second letcture of the series was delivered by Ram Dhan Singh of B.Sc. II Year on the 26th, of September. He spoke on Fertilizers.

Ashish Chakravarty having left the College, Suman Bagga has taken over the duties of the President of the Association.

## The Bengali Literary Association

Adviser-Mrs Tapati Chakravorty.
The following persons were elected office-bearers for 1964-65

1. Secretary - Tarun Bhattachariya B. A. Second year.
2. Joint Secretary-Saraswati Poddar
B. A. II year.
3. Treasurer - Sandip Kumar Majumdar
B. A. II year Class

Representatives :-
Third year - Pradip Kumar Banerjee.
Second year - Som Nath Bhattachariya.
Sabita Roy.
First year- Dipiti Chatterjie.

The first year students were given a welcome by the Association in a brief ceremony held on 3rd August.

The annual cultural function of the Association was very much appreciated by the parents and guardians who kindly attended the function. The function, held on 26th October, 1964, was presided over by the Principal, Dr. Amba Prasad. In his presidential address, the Principal expressed his hope that the study of Bengali language and literature would be more developed in the college in future.

The special attraction of the function, was Rabindranath's "Chitrangoda", a dance-drama organized and produced by the Bengali students of the college. A one-act play "Iskabaner Tekka' by Dhananjoy Bairagi was also staged by the students. The student artistes entertained the audience with solo and chorus songs. Light refteshments were served after the function.

## The Sanskrit Parishad

The Annual Elections of the Sanskrit Parishad were held on the 13th, August. 1964. The following students were elected to the various offices of the Parished for the year 1964-65.

Adviser : Shri M. L. Chaudhry
President : Meera-B. A. Sanskrit. Hons. II. year.
Vice-President : Navnit Rai B. A. Pass II year.

Secretary : Nirmal Gupta : B. A. Sanskrit Hons. II year.

Class Representations and Members of the Executive :
B. A. (Pass and Hons.) I Year Santosh.
B. A. (Pass and Hons.) II yearKusum Vij.
B. A. (Pass and Hons.) III yearVirendra Pahuja.

Student Editor of the Sanskit Section of "Desh"

The first meeting of the Sanskrit Parishad was held on 29th September, 1964. Swami Samarpananand, Ex. Vice-Chancellor of the Gurukula University Kangri gave a talk on Sanskrit and Sanskriti. Explaining the meaning of the Sankriti and its relation with Sanskrit, he showed that at one time there was a world nation based on Vedic literature. The idea of the world nation may be a dream for others but it was an historical fact for us. He forecast that a time would come when Sanskrit, due to its unifying force and manifold specialities, would be the international language and Vedic culture would predominate all over the world. and establish world peace.

## The History Association

The following will constitute the Executive Committee of the History Assiociation for the year 1964-65.

Adviser-Shri B. B. Saxena
President-Raj Kumari-B. A. (Hons.) III year
Vice-President - Punita Kapur -
B. A. (Hons.) II year

Secretary - B. S. Sidhu - B. A.
II year
Joint Secretary - Onkar Jagtaran Singh - B. A. (Hons.) III year
Class Representatives :-
Shobha Arora - B. A. III year
Bharti - B. A. II year
Kamini Chaddha -- R. A. (Hons.)
II year
Yug Parkash Dar - B. A. (Hons.)
III year
Ashok Behari - B. A. (Hons.)
II year
Rajesh Sood - B. A. (Hons.)
I year

## The Social Service League

The following constitute the office bearers of the League for the Year 1964-65
Adviser : Shri S. M. Jhangiani
President : Sarojini Kapoor
Dice President : Miran Rajani
Secretary: Shyam Sunder Malkani
Joint Secretary: Mahesh Satija
Prem Lal Nahar
K. K. Jain

Ramesh Ahuja
Members Ashok Bhutani
of the Prakash Badlani
Executive Urmil Talwar
Rekha Bhargava
Sukh Versha Vohra
Nirmal Vij.

The League in collaboration with the College Union collected Rs. 494.44 for the Teacher's Day. This year, too, we collected the largest amount.

A few donation-coupons in aid of the All India Federation of the Deaf were also sold.

A number of articles lost and found by students were restored to the rightful owners.

Physical Education and Sports
We have not been able to convert our grounds into good and grassy playing fields. The main difficulty is of water. Inspite of these difficulties, our players are very keen and have started practice in various games in right earnest.

We have entered our teams for Inter-college competitions for almost all games. Our women Badminton team is doing very well this year. They are Runners-up in the University. The finals were played on 11th September, 64, versus the Lady Irwin College in their Hall. Our two players, namely Santosh Chawla and Santwana Banerji deserve special congratulations.

Our Volley-Ball team lost with a narrow margin in the semi-finals. Our Cricket team has not been able to put up a good show. They lost in the first round.

The following office bearers are nominated for various games for the year 1964-65.

Cricket: Captain: Vinod Kumar Wahi
Secretary : J. Raghvan
Foot-ball: Captain : S. P. Gangoli
Secretary : P. Mookerji
Hockey: Captain: Sardari Lal Verma (E)
Secretary : Arun Kapur
Athletics: Captain : Mohinder Singh (E)
Secretary: Anoop Singh
Basket-ball: Captain: Satish Bakshi
Vice-Cap: Yousaf (E)
Secretary Om Parkash Kohli
Table-tennis : Captain: Mohinder Berry
Secretary : Vinod Maini
Dolley-ball: Captain : Y. S. Bist
Secretary: Anand Sawrup Daggar
Net-ball: Captain Santosh Arora Secretary: Shashi Arora
Throw-ball: Captain: Rita Sahai
Badminton: Captain: Sudarshan Maini
Secretary : Surindar Shawney

## Physico-Medical Test

Physico- Medical Tests conducted by the college doctors: Dr. Rustogi and Mrs. Oman reveal that the standard of eye sight of our students, both boys and girls, is going down. It is, therefore. imperative that their parents take proper steps in time to stop further deterioration in cases reported.

## To Our Contributors

Articles for the next issue of Desh should reach the Editor of the respective sections by 31 January, 1965.

Please write on one side of the page only and leave ample space between the lines for corrections.

## CONDOLENCE RESOLUTION

This Emergent meeting of the staff and students of Deshbandhu College places on record its deep sense of sorrow and grief on the death of Lala Madan Lal Ji, father of Dr. Amba Prasad, Principal, Deshbandhu College. It prays to the Almighty to grant peace to the soul of the deceased.

It further resolves that copies of this resolution should be sent to the College Magazine and to Dr. Amba Prasad.

13 November, 1964.


## संस्क्रुत- विमानः:

ग्रध्यक्ष: —मनोहरो विद्यालङ्दार:
छ्वात्रसम्पादक: —वीरेन्द्र: वहूजा
विषयान्तुक्रमः

| 2. सम्पादकीयम् | ... | वीरेन्द्र: पहूजा |
| :---: | :---: | :---: |
| २. संचे शक्ति: | $\cdots$ | प्रमिल। गुप्ता |
| ३. सगर-कथा | .. | सन्तोषकुमारी वर्मा |
| ૪. विधिरहो बलंवान् | ... | " |
| 廿. महाकवि: भारविस्तस्य काव्यञ्च | ... | वीरेन्द्र: पहूजा |
| ६. भारते शिक्षाया: माध्यमम् | ... | सुलभा वर्मा |
| ७. ग्रभिनन्द्नम् | $\cdots$ | मनोहरो विद्यालङ्दुए: |

## सम्फ़द्कीचस्र्ड

'देश’पत्रिकाया: प्रस्य वर्षस्य प्रथमोडङ्ळो विद्यते भवतां समक्षम्। सवंत: पूर्वं सर्वेषां नवागन्तुकानां छात्रारां स्वागतं कुर्मे वयम्। एष हर्षस्य विषयोडस्ति यदस्माकं महाविद्यालये संस्कृतछात्रागां वृद्धिरमूत् । विद्याधिनіं या श्रभिरचिः संस्कृतभ।षां प्रति दरीद्दर्यते, सा श्रस्यां 'देइ'पन्त्रकायां स्कुटितास्ति। देशापत्रिकायां विद्यार्थनः: स्वरुच्यनुसारं विविधां सामग्रों दत्वा स्वविचारान् सरलेन संस्कृतेन ग्रभिव्यक्तुं यतन्ते।

सामान्यतो मेधावी पुख़ः एव ₹्वमेधया स्वंनु भवस्याभिव्यक्तो सफलो भवति 1 स निजाभिव्यक्ट्यंव स्वविचारान् स्पष्टीकरोति। भावाभिव्यक्षक्ति: लेखकं तु ग्रानन्दयति, पाठकवर्गमप्यनुभवेनावगतं करोति। प्रयोतु: रचनासु स्वाभाविका भावाभिव्यक्ति: स्थाने स्थाने नधानि नवानि रूपारा धारयति, सा च पाउकेषु घ्रमन्दानन्दं जनयति ज्ञानं च वर्षयते। कृतिकार: नानाविधरूपेषु स्वप्रतिभां प्रदर्शयति । अभिथ्यन्जनाया: विविधा: विष!: गीत, गद्धगीत, श्राख्यानं, नाटकं, व्यंग्यचिश्रमित्यादयः भवन्ति। यद्यपि इयं प्रतिभा जन्मना भवत्वत, तथापि श्रस्या: परिक्कारो यत्नेन कत्तुं शक्यते। विद्याधिनां जिज्ञासा भवति यन् तेषां रचना: पत्रिकायां प्रकाशिताः सन्ति न वा । यदि केनाधि हेतुना रचनाभ्य: प्रकाइानावसरो न दीयते र्तहि ग्रनेन लेखको निराशो हतोत्साहो वा न भवेत्। अ्यस्यानेकानि कारानि सन्ति। यथा मोलिक ताया: 尹भावो विशेषत: पत्रिकायां च स्थानाभाव:। सोल्साहैः तंः उन्नते: पधि श्र्रसरीः भवितन्यम्

अ्रहो ! अ्रस्मद्दे शास्य महद् दीर्भाय्यं यदीद्रशी परिष्कुततमोन्नततमा भावभिव्यक्तौ च समर्थतमा भाषा स्वगौरवपदान् सम्र्रति च्युतास्ति। कोडस्या:अ्यवनतेः हेते: ? कोइस्या: उपेक्षां प्रति उत्तरदायदी ? सम्यव्विचारेगा परिस्फुटं भवति यद् वयमेव संस्कृतस्य घ्मवनतेः उत्तरदायिन: ₹म: । घ्रस्म|भि: राजनैतिकस्वतन्श्रता नाम्नैव लब्धा भावनाचिन्तनादिष्यु वयमद्यापि पाइचात्यानामेव दासा: स्मः। यदि वयं स्वातन्र्यं यथार्थतो ज्ञातुं बदपररकारा: सम:, यदि वयं स्वीयं संस्कृतिं सभ्यतं चावगन्तुं वान्छ्राम:, यदि वयं स्वराष्ट्र प्रगतिपथं नेतुमिच्छाम: ताहि प्रर्माभिः सवँँ: संस्कृतस्य पुनद्धाराय अ्यस्य प्रचाराय च प्रयास: कर्ताव्यबुद् या विधेयः । इयमेव च सरस्वतोदेव्या: बास्तविकी भर्रन्चना भविष्याति।

भ्यस्य वष्षंस्य विषमपरिस्थितीनां मध्ये ध्रस्माकं शानित्तितस्य लोक्नायकस्य राष्ट्टस्य च प्रधानमन्त्रिए: श्रीजवाहरालालनेहरो: निधनेन राष्ट्रस्यापारा क्षतिः समजनि, यस्याः पूरितः श्रसम्भवव्राया। वय सर्वे तस्य महापुरषस्य ग्राइ्मनः सद्गतिं शान्तिं च करणावर्राललयं प्राथंयामहे कामयामहे च यदिदं भारतं श्रीमज्जवाहरस्य विचारान् श्रनुसृत्य तद्द्रातपथन्चावलम्ब्य प्रतिदिनं प्रगतिपथं प्राप्य सुखसमृद्यक्च जवेन आ्माहरतु। ग्रनेनेव स प्रात:स्मररीयो जवाहरः श्रन्वर्धाभिधेयो भविष्यति। श्रयमेव च स्वराष्ट्रनायकं नेहरुं प्रति यथार्थत: श्रद्धान्जलि: भवितेति।।

## शहति:

प्रमिला गुप्ता बी०ए० संस्कृत श्रानसं द्धितीयो वर्षं:

एकत्वभावनया यत् कायं ः हियते तद् "एका" इति कर्यते। एकतायाः स्रर्थ: एषोडस्ति यद् घ्रनेका: नराः भिन्नभिन्नव्यवसायव्याप्रः: घ्रनेकविधकार्यंस्वादयितारश्च स्वक्षेत्रेष्पु मीजियेक विःाय कार्यारिए कुणुं:। ऐ स्येन मानवो बतबान् भवति। एकतया भ्रनेका: सभाजा: विभिम्ना: राष्ट्राशच समुं्नींति प्राप्नुवन्ति।

घ्रद्वत्वे संसारे ऐकयस्य महतंती श्रावइयकता वर्तंते । यरिमन् देको एकता नास्ति स: निजस्वतन्ग्रतां रक्षितुं न शक्नोति। ऐक्याभावेन चिरं यावत् पारतन्यये श्टह्वलाबद्वोऽइमाकं देशोडपि महान्ति कष्टानि म्रसहत। परं यदा भार्ते एकतायाः भावता जागृता घ्रभूत् तदा सः स्वातन्य्यमलभत। एकताया: घ्रद्भुत एव प्रभावोडfित। तन्तुसमूहेन निर्मता रज्जु: अ्मस्यैव तथ्यष्य पर्रचायिका भवति। पुष्पसमूहेन एव वृक्षाराश शोभां प्राप्तुव्वन्ति। जर्लबिन्दुसमूहैः महानदी भर्वति सागरे च ख्राट्ममयादां विलोनयति। एको वीरः सैन्यं न भवति। एका म्रुजगुलि: तां इान्त न वहति या पञ्चसु अ्रह्गुलीषु ग्रस्ति। तथैव एकाकी जनो न श्रक्तमान् यथा च ₹वजातीयानां संधातरूपे समाजे भवति। क्षुद्राशा तृराानि यदा रज्जुरूपं धारयन्ति तदा महाबलवान् गजोडच तैं : बध्यते। घत एवोच्यते-

अल्पानामपि वस्तूनों संहतिः कर्यस्साधिका। तृएँारुं सात्वमापन्न्वर्बघ्यन्ते : मत्तदन्तिन :॥

संसारे अ्रादिकाल।त् प्रभृति एकताया: महत्वं परिस्फुटं वतंते। श्रुतिषु स्मृनिष्धु यत्र तत्र एकताया: महिमा गीयते। ख्वा्वेदस्य श्रन्तिमे सूक्ते एकताया: माहात्म्यं संस्तूयते। -म्रद्यत्वे चीनदेशः भारतस्य उत्तरसीमार्वत्वभूमौ स्वाधिकारम् उद्धेषयति परमेतस्य महत् कारशामिदं यद् भारत्तवर्षं विधटनतर्त्रानां सनिन्वेशोडस्ति। यदि म्रस्माकं नेतार: एकत।या: सूत्रे निबद्धा: भवेयु: तीह चीनदेशा भारतभूमे: निष्कास्य ₹वयशो रक्षितु समथंः: भविष्यन्ति। ग्रतः एकताबलेन महानित्ति कार्योगिा प्रfि सिध्यन्ति। सवंदा मानवा: सुखं समृदिंद्ध स्वातन्ड्यज्न इच्छछन्ति यदि मानवाः एकव्वभवनया प्रेरितः भवेदु: तदा ते सफलमनोरथाः स्यु:। इल्थ जगति सुखस्य स स्दलवाशचंकत्वभावनयंव युक्ता: सन्ति। श्रुनिषु एकताया: महिमा गीयते सा प्रशस्ति: श्रत्र घ्रस्माभि: सर्वदा स्मरएीयम्।
"संगच्छछध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् । समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं
मन : सहीित्तमेषाम् समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व:
समानेन हविषा जुहोमि ।
समानमस्तु बो मनो यथा व: सुसहासीति।"
घ्रतः एतत् सत्यमस्ति यं्रैकता विद्यते तत्र मुबशान्तिसमृद्धयो जायन्ते, यन्रंकताया: घ्रभावो वर्तते तः दु:खर्य घशान्ते₹च साम्राज्यमेवेति ।

## भारते शिन्ताएसF: मFधघम्न

सुलभा वर्मा, बी.ए. संस्कत श्रानर्स द्वितीयो वर्ष:
'झिक्षायाः माध्यमं भारते फंक स्यात् ' इति बहुकालाद् इदं विचारितमभूत् । नानाभाषाभाबिभि: विद्वद्ध्र: प्रत्नीयं: शिश्षाकर्गांधररेरच नानाविधा: सभ्मतयो दत्ता:, ता: सर्वा श्रवि सम्मतयो न कार्यरूपे परिएामयितुं शक्या:। ग्रद्यावधि ग्राद्नलभाषा 'राजभाषा' रूपे स्वीकृताइमूत। विधगननिर्मतृपरिषदा १६६У तमरिव्रण्डीय संवत्सरपर्यन्तं तु ग्राह्नलभाषाप्रयोगः स्वीकृतडस्ति। किन्तु नवर्षरमासे ग्रस्माकं मन्त्रिएात श्रीलालबहादुरशासित्रिमहोदयेन राज्यसभायं घोषितम्-ग्रां्न् लभाषां राजभाषारूपे स्वीकतुं यद् विधेयक लोकसभायां प्रस्तुतमासीत्, तद् विधेयक नाधुना सभायं प्रस्त्येत्। एतद्विधेयकविषये न केवलं हिन्दीभाषिएामेव, घपितु विभिन्नप्रदेशवास्तध्यैरपि विचारशीलंः तस्य विरोध: कियते। विधेयअस्सास्य शबद्दरचना कामं कीदृशी ध्रपि भवेत्, सेयं ग्राІ्दलभाषा 'सहराजभाषा' रूपे स्वीकृतापि यदि भवेत्, तदाणि सा ‘मुछ्यभाषा' भविष्यति । यतो हि तस्यों प्रकाशिता: नियमा: घोषशाए: विज्ञप्तयश्चेत्यादय: प्रामारिक्या: स्वीकियेरन् । हिन्दीभाषायां तु तेषामनुवादमाश्रमेव भविष्यति। ग्रस्तु, नास्ममन समये सेयं विवादचर्चाडपि समुचिता भवेत् । ग्रघुना चीनयुद्धकथया सवेॅरीि विवादाः समाप्ति नेतब्याः।

राज़भाषायां: प्रश्न: कामं विस्मृतोडfि भवेत् परें शिक्षायाः माध्यमस्य प्रहनः सर्वंदा सम्मुखगत: एव। शिक्षा हि दैनिकजीवनस्याऽड्लम्। श्राह्दल-

भाषा कामं भवतु राजभाषा, किन्तु प्रारमिभेषु. मध्यमिकेषु च निद्यालयेषु कस्या: भाषाय मधध्यमेन शिक्षा प्रदीयेत विश्वविद्यालयेषु च केन मःध्यमेन इत्ययं प्रश्नः सर्वदा समुदेति।। प्रसंगेघ्भस्मिन् नेदं विस्मरयीयं भवेत् यन् शिक्षारया: माध्यमेन सही भाषाएगां विकासस्य घनिष्ठ: सम्बन्ध:। ग्राह्नलभाषाया: सम्बन्धे एष प्रबलतम: तर्क: दीयते यत् सेयं विकसिततमा भाषा सर्वविधभावाभिव्यक्ती चेयं समर्था। ग्रस्या विपुला शब्दराशि:, म्रस्या हि विज्ञानटैकनोलोजीप्रभृतिषु विषयेष्ड प्रामारिकानि पुर्तकानि ।' किन्तु सोऽयं प्रशन: प्रबलतया समुत्थितो मवेत् 'यदि विद्यालयेष्ठु महाविद्यालयेषु च श्रा ह्भलभाषयैव शिक्षा भवेत्तहि हिन्दीभाषां ग्रन्यान्यभारतीयभाषा: प्रति वा विद्याधिन: किमिल्यवधानं दद्गु:। तदा हिन्घादिभाषारचितपुस्तकानां, पारिभाषिकशब्दानां वा ग्रध्ययनाडध्यापनादिषु उपयोग: एव न भवेत्तीह भाषाराामासंा विकासइच कथं सम्भवेत् ? एताहहो भाषासंकटेडपि ग्रस्माकं नेत्यांा स्थिरा नीति: सुनिशिचतविचाराइच यदि स्यु: तहिं एव हिन्दी भाषाया: विकासः सम्भवः। ग्रान्नलभाबाया: भारतीयानां कृते उपयोगः fर्नववादमेव परं विचारविनिमयसाधना: तु भारतीयभाषा एव भवितन्या:। घ्रतः प्रादेशिकभाषएगां विकासो नितराम् ध्रावइयक: । ग्र|माध्यमिकशिक्षाया: विश्वविद्यालयरिक्षां यावत् शिक्षाया: माध्यमं हिंन्दीभाषेव भवेदिति सुनिशिचतं मतं मे।

(6)

## Desh

## N. C. C. SECTION


"l promise that 1 will honestly and faithfully serve my country and abide by the Rules and Regulations of the National Cadet Corps and that I will, to the best of my ability, attend all parades and Camps which I may be required to attend by my Commanding Officer."

Lt. D. S. Chaudhry, Officer Commanding
2/Lt. D. S. Mann
Sub/Lt. J. K. Jain
U/O. Sudershan Gupta
Sgt. Sneh Prabha Gulati

## CONTENTS

## Page

A Message ..... Principal (Dr.) Amba Prasad ..... I
A Message .... Colonel Qadam Singh ..... ii
A Speech _. Principal (Dr.) Amba Prasad ..... 1
The Role of the NCC in National ..... Sub/Lt. J. K. Jain ..... 2
Defence
From a Cadet to an Officer _-. 2/Lt. Lalit Kumar Ohri, Old Student 9
The Role of the NCC in .... 2/Lt. D. S. Mann ..... 11National DefenceAbout the NCC...... Lt. D. S. Chaudhry13
"The price of freedom will have to be paid in full measure, and no price is too great for the freedom of our people and of our Motherland."

Jawaharlal Nehru


A Message

Principal's Office,

11 January, 1965
It gives me great pleasure to know that 'Desh', our College Magazine, is going to introduce a new feature from the coming issue. This will be called the N.C.C. Section. The Section, I learn, will contain not only news of the NCC activities in the College and outside but will also publish articles on the importance of the NCC as a Youth Movement in the Capital. Our Cadets, old and new, will, I understand, write about their experiences. Moreover, I believe it will offer cpportunities to our old cadets who are now in the Forces to establish and retain their contacts with their alma mater. This will serve to encourage our promising cadets to volunteer themselves as officers in future.

We have at present a number of our old cadets in the Forces and they are to be found in all the Service Wings. I would like to suggest that the NCC Department in the College should maintain a register of such old cadets as join the Forces so that they could be approached to write for the NCC Section of 'Desh'.

I am glad that this Section will educate our young students, both boys and girls, about their duties as NCC cadets and I am sure this Section will be read with great interest by the students of the College. I wish it every success.
ane $b a c$
Principal.

## A Message



## NATIONAL CADET CORPS DTE., DELHI PROBYN ROAD, DELHI-6

24 DECEMBER, 1964

I feel greatly privileged at having been asked to write this message for Deshbandhu College Magazine.

I highly appreciate the idea of bringing out NCC Section in College Magazine depicting various activities of the NCC and hope it will inspire the cadets to live up to the ideals of National Cadet Corps


Col. Qadam Singh
Director NCC

## A Speech ${ }^{\text {- }}$ <br> Priecipal (Dr.) Amba Prasad

Guests, my colleagues and my friends,
Today, the cadets have taken an oath. They have expressed their determination to serve the country with devotion, with courage and with sincere truth. They have taken a vow that they will follow the rules of the N C.C. They have also taken a vow that they will obey the orders of the Commanding Officer and they will be regular in their parades and they will regularly participate in all the activities of the N.C.C.

Cadets, this oath you have taken today which is the day of independence. 15th August is the day of Independence. Seventeen years ago India attained independence. India became free and I am sure you realize the significance of freedom: what it means to a country which had been under the tutelage of a foreign power for more than 200 years. Some of you are aware that we had to pay a high price for this freedom and that this was attained after a long and sustained struggle.

The other day I read in the newspapers, and I think you also read it, that in Delhi some of the old Congressmen met together; some of those who had suffered in the fight for freedom, and struggled for the independence of the country. You should have looked at their faces. You can see their faces
in the photos and if you had met some of them, you would have seen that the signs of sacrifice were in their faces. Their sacrifices were not in vain and this day reminds us of the sacrifices of these humble people. It is not the sacrifice of the leaders (of course they went to jails, that is all right) but think of the sacrifices of common people who may not be known to you, and who may not be known to me, but who really suffered and suffered for the sake of the country and we have to remember those people whose names may be unk nown and there may be thousands and thousands of them. We have to see what they have done for us and remember the sacrifices they have made for us and we commemorate their memory by taking a pledge that the independence, which their sacrifices have brought for the country, is preserved.

So our task-the primary task of all of us-is that we have to preserve this hard-won freedom. We have, of course, to preserve it both from internal dangers and from externà: dangers. You people, the Cadet: particularly, have to preserve this freedom as you grow in age and maturity and enter the armed forces and become officers. You have to preserve this freedom particularly against the foreign enemies. We have great traditions. We have a

[^1]tradition of sacrifice and courage. Remember the great sacrifices and the great deeds performed by our Generals in the past and our armies in the past. Even in the blackest period of Indian History-take the period when we had nothing but defeats by foreign armies-even then we had great men, great soldiers, great commanders who really showed great deeds of valour. We have to remember those days when we had won victories and when we had fought against the imperial power at all times of history. Those were great days. We have to remember, therefore, that our country is a country of rich heritage, rich particularly in military tradition, in that which we call as great deeds, courageous deeds, the deeds which bring honour and good name not only to the person who really performs these deeds but also to his family and to the country.

Perhaps, you are aware that India today is not altogether unthreatened; that we have people who are very friendly to us but we have people who are not friendly to us; not for any fault of ours. We are a peaceful people. As you all know we never initiated war. We have here taken a pledge, a vow that we will not commit any act of aggression. This is also a lesson of Indian History. We never sent our armies abroad to conquer any other country but we have just now taken a vow that we will preserve our freedom at all costs, at all sacrifices. However high the price, it will have to be paid; the freedom will have to be preserved the fruits of which we have tasted
already. The fruits of freedom are really fruits which all of us cherish. That is our tradition.

Also internally we have very many difficulties in the country. During these seventeen years we have had of independence India has progressed very much. We see progress all round-in technology, in industry, in scientific advancement, in respect of the constitutional developments, in respect of integration of the country, in respect of largely the economic and planning process. You see that progress all right but you have to consider one aspect, (and today I invite you and I appeal to you to see) that you also make progress in the inner self, in your hearts, in your moral fibre; that you become worthy sons of our mothetland.

We are increasingly hearing of some difficulties in respect of rise in prices in respect of this or that thing. Almost everybody seems to be hard up these days and this is not due to any kind of unkindness on the part of Nature. We should not readily and always blame Nature. Nature has been very kind to India. Nature has always been kind to us. We should blame man. Perhaps, whatever the scarcity we have is due to the man-made deeds. Let us discard evil deeds; let us hate all such things.

All of us and all of you, young men and women, we have to take a resolve that such things will not be allowed to happen because they really endanger internally and potentially
N. C. C.


Principal (Dr.) Amba Prasad on a routine Inspection of Cadets (Women) at Parade


Cadets (Women) Promotion Test for Under Officers'rank in progress

and fundamentally the country's Freedom. It is the character of the individual; it is the character of every being in the country that, really meaking, speaks ahout the qualities of the country, and the nation and if we somehow allow that character to go down; if we allow the people to do Thatever they like in their adminismative action or in their action as citizens, then certainly we are undernining the foundations of freedom.

I, therefore, on this sacred day invite you to think about and I invite you to take a pledge in your hearts that you will yourselves be honest; you will not tolerate anything which really endangers the freedom and independence of the country. You are the pride of the country. You are the flowers of the country. You are the youth of the country. The nation looks upon you as people who will certainly build up the country's future and $I$ am quite sure in my
mind and I can tell you that all the teachers in this College and all those who are grown up, who are sitting here, have this in their minds that you are capable of shouldering the great burdens; that you are worthy of the trust that is being reposed in you; that you are the flowers of the country, the future hope of the nation.

And today, when I inspected the parade, I felt very happy because you gave me a turn out which made me very happy. I congratulate all of you and the organizers and the Officer Commanding for this excellent turn out and I feel that you will remember this day. You will remember this day of independence of the country and ever in future not do anything which in any way may injure the country's cause or country's interest.

Thank you very much !"

## The Solidanity Day Pledge

"I reaffirm the solemn resolve of our people to preserve the freedom and integrity of My Motherland however hard and long the struggle and however great the sacrifice.

1 pledge to work with determination for the strength and solidarity of the Nation."

# The Role of the N.C.C. in National Defence 

Sub. Lt. J. K. Jain

When the National Cadet Corps was formed in 1948, its membership was kept voluntary. Many a time the suggestion that it be made compulsory for all students was considered. But it was not accepted, or if accepted in principle, it was not implemented. Then the situation changed, An event of momentous significance took place. The Chinese unleashed unwarranted aggression on our sacred Motherland. Our national conscience was outraged. We resolved to resist brute might with the last drop of our blood. We also made a survey of how much endeavour we had put in to keep our frontiers well-guarded and well-defended. We found that we were guilty of unpardonable negligence on that front. We realized our blunder and set out to rectify it. We adopted various measures to strengthen our country militarily. The question of compulsory military training came up once again for serious consideration, but this time with a greater urgency. We decided to introduce it in all schools and colleges. Our late Prime Minister inaugurated the new venture on 14th August, 1964, with tremendous hopes.

It should be made clear, at the very outset, that though the decision to make N. C. C. training compulsory was precipitated by a war imposed on
us, against our choice, yet it was not done so only with a view to preparing us directly for war, for creating a second line of defence, that is, a second line of fighters. What was even more important was stated by Pt . Nehru with precision, when he said. "I should like every student to have this training. I do not think that this training is training for war or necessarily for military or like purpose. Some of those, who want to go to Defence Services, can certainly do so. But essentially I consider this training necessary for good citizenship." "Training for good citizenship"--that is the vital phrase.

The avowed objectives af the N. C. C. are as follows :-

1. Development of leadership, comradeship, character and ideal of service;
2. Stimulation of interest in the defence of the country to the widest possible extent ;
3. Building up of a reserve of potential officers to enable the Armed Forces to expand rapidly in a national emergency.

As to the first purpose, I would like to draw your attention to the most pressing problem oppressing our country, viz:, the poor quality of

* A paper read at The Leadership Seminar organized by The National Council of University Students of India.
human material. It is a painful irony that in the land of Budha, Gandhi and Tagore - a country priding herself upon her moral and spiritual stature, the average citizen should be what he is-slack, easy-going, self-seeking, devoid of self-control and integrity, at least in public life, lacking in critical intelligence, patriotic fervour and the spirit of dedication, pursuing unworthy aims, serving uncreative causes. That is the reason that chaos, corruption and waste of energy are on the increase in national politics and even in educational institutions. If you go to a college you will find the average student indifferent inside the class room and averse to creative endeavour outside it. He moves in an unreal world of make-believe, without the strength to resist unscrupulous and egoistical elements. Students lack so much in discipline that it has become well nigh impossible to organize them for any fruitful activity that demands steadfast application and concentration (political, social, recreational, cultural or intellectual). When this is the case, how can any one expect that leaders-men of vision, devoted to the welfare of their people-will rise from amongst their ranks?

Yet despair and actionlessness will not help us. We have to devise means to check the present trends and provide opportunities to the youth of the country for intense occupation of their better selves. It is here that the N. C. C. training is, if not the complete, at least a partial answer. For at least four hours in a week, they come together in large numbers and learn to behave like a self-controlled
and obedient team. They imbibe a new mentality which values toughness and stamina, smartness of appearance, and wakefulness, efficiency, hard work, organization, working together in unison for a common end which is larger than the individual, dignity and selfrespect, punctuality and above all discipline which here means adherence to rules (law-abidingness). They are made aware that they are the soldiers of a free and proud nation and that service of their Motherland is their prime duty. They learn to handle responsibility with care and devotion. No slackness or flippancy or dishonesty is tolerated. They come to respect each other, regardless of differences of caste, colour, creed or provinciality and thus national integration is promoted. In the annual camps, Social Service camps and Advanced Leadership Courses, we organize and control their lives from morning till evening. Besides the consolidation of the above qualities, emphasis is laid on overcoming the cadets' (boys' as well as girls') inclination towards comfort and soft-living. They are taught to be hardy and strong, capable of meeting hardships with vigour of courage and determination. Through outdoor life, fear of danger is eradicated and spirit of adventure is fostered. Above all, cadets, showing initiative, resource and power of command, ate given ranks. Their potentiality of leadership is fully exploited.

It would, however, be wrong to think that $N$. C. C. training is just a solemn affair. In the Camps, in particular, we organize games and recreational activites like camp-fires
to make them relax, be gay and joyous. By working and relaxing together, they develop true camaraderie, "espirit de corps."

These disciplined bands of young people could be employed for any task. In the event of riots, disorder, floods or like disasters, they can be mustered and entrusted with the task of restoring order and organizing relief-work. If war breaks out, they can very well look after people at the home-front and help maintain internal harmony and peace.

Pt. Nehru once said, 'It is men and women of quality that give stature to a nation." N. C. C. training is a serious attempt to produce men and women of quality, i. e., good citizens. These men and women of quality, wherever they are, in fields. factories, offices or universities, will make their contribution to national progress. Modern war, as you all are a ware, is not fought by the standing armies alone. It is an entire people's will to fight and capacity to defend themselves, which matters. Without 'men or women of quality', no country can ever prosper or win a war.

Coming to the second objective, namely, stimulation of interest in the defence of the country to the widest possible extent, I would observe that the N. C. C. can play a significant role. It creates among the wide commonalty of boys and girls what is usually termed 'defenceconsciousnes'. It makes them vividly aware of the fact that.our country
is threatened, that it must be defended and that each one of them is responsible for the defence of the country.

Ignorance of the needs and problems of the forces and of what the defence of a country entails is, unfortunately, rampant among our people. Even the Chinese aggression and a new consciousness following close upon its heels could not give the common citizen a precise idea about the enormous effort needed for the protection of our frontiers. The N.C.C. training remedies this glaring lack of national life at least as far as the citizens of tomorrow are concerned.

Then, the N. C. C. serves as an important link between the civilians, on the one hand, and the services on the other. It makes it possible to have effective give-and-take and thus establishes a fruitful relationship between the two categories of population. The N.C.C officers and cadets come into contact with services personnel and get some idea about how they live and work. The N. C. C. officers spend short periods, after regular intervals, in services establishments and get an opportunity to see them from inside. In this way mutual regard between civilians and services personnel is generated. To the civilians, the man in the uniform does no longer appear as a strange creature, with a stiff carriage and mechanical attitudes, paid and thereby condemned to protect his country from the air, from the snow-clad mountains and on the high seas. To the
services, the civilian no longer looks lax and, slovenly, inefficient and mud-dled-deserving only contempt. The two classes come to realize that they are all human beings, sharing so much in common, entrusted with different tasks, though. This mutual understanding promotes mutual help and brings about solidarity which is vital for national defence.

Finally, the N. C. C. training helps in building up a reserve of potential officers and men. It initiates young people into military discipline and helps those, who wish to join the regular forces, to get adjusted to military life without undergoing travails and miseries of initial maladjustment due to a sudden change of environment. Moreover, in a national emergency, it becomes easier for the armed forces to expand rapidly. With further training. some, if not all, N. C. C. cadets and officers could be used to fight against the enemy along with or behind the armed forces. It must not be forgotten that even in the nuclear age, sheer numerical strength of combatants is a distinct advantage. We, in particular, have learnt this lesson at a great cost and cannot afford to be oblivious of this.

Thus to sum up, the N.C.C. training helps in producing good citizens, good soldiers, good leaders, in inculcating defence consciousness and strengthening the relationship between the civilians and services personnel.

Now, I would like to take up some objections raised against compulsory military training. You hear respon-
sible people, including lecturers, principals and even military officers, asserting, in all seriousness, that the N.C.C. training is a waste of resources. Besides, it interferes with studies. Those of us, who believe that the N.C.C. has a vital contribution to make in national progress and national defence, are regarded well-meaning but foolish. This objection springs, to my mind, partly, from inertia and. partly, from ignorance. We are living in a fools' paradise if we do not know that our present system of education, with its emphasis on knowledge and scholarship, has shown deplorable inadequacy in meeting the challenges of life. It has failed to infuse into the youths the indispensable qualities of discipline, industry, leadership. courage, honesty and a sense of responsibility, which means it does not prepare them for action. I would like to stress that mere academic attainment, in absence of the aforesaid qualities, can never strengthen a nation. Compulsory military training is an institution that can build up the will, the morale and the moral fibre of a nation and as such it is a wonderful supplement to the present mode of instruction. Of what use will our educational institutions be, if our treedom is jeopardized and if our young folk cannot act collectively in the service of common ends ?

The next two objections arise from a certain outlook on life and are, hence, much deeper and more difficult to be countered. Firstly, it is said that military discipline is an imposition from without and repressive in character. For its effectiveness, it
depends mainly on fear of punishment. It suppresses free enquiry, questioning spirit and rebelliousness which are essential for the growth of civilization. It implies absolute obedience which is even blind and mechanical at times. It only checks chaotic and separative tendencies; it cannot quite transform them. It sirikes at the root of individual freedom and prevents some thing new from coming into being. As contrast ${ }^{-}$ ed to this, creative discipline is a spontaneous organization of impulses and tendencies around a purpose that the individual has freely chosen.

Though the validity of the above criticism cannot be denied, yet in defence of military discipline I would submit that life is an infinitely complicated and complex phenomenon. It is full of contradictions. This we can see everywhere. Look at nature first. When we are confronted with the majestic spectacle of mountain - ranges, canopied with a pure blue sky, radiant with a glorious sunshine, breathing invigorating breeze, we are filled with awe and wonder, joy and serenity. We spontaneously feel a benevolent presence. This is Nature in het aspect of 'Shantam' (peace). But when we turn to wasteful floods, earthquakes, volcanic eruptions, barren and burning deserts, disease-carrying worms, we are baffled by the Creator's destructive fury, his 'raudra' (teriible) aspect and feel that man is surrounded by hostile forces. Look at the human psyche. It is full of love and compassion, alive with an aspitation for beauty, truth, goodness, bliss, freedom and immortality; it is
also full of hatred, violence, lust, greed, jealousy, wrath and egoism. The same ambivalence is reflected in the co-existing phenomena of birth and death, growth and decay, light and darkness. If we do not wish to withdraw from active living into a contemplative heaven, it becomes necessary for us to hold contradictions in balance. As long as life continues to be ambivalent (and I do not visualize any posssiblity of its transformation in the near future). our endeavour has to be double faced. apparently self-contradictory, if we wish to answer the challenges presented by life. That means, particularly, in the present context, that along with our plea for peace and genuine efforts to promote it, we have to remain prepared for a war. Alongside individual freedom, respect for rebelliousness and spontaneity, we have to accept regimentation, authority, and command. National emergency demands collective and concerted action, in obedience to a leader, conformity to a collective decision. In the absence of that capacity, we shall collapse against the Chinese who have neither respected nor will respect our peacefulness, and our demectatic concern for individual freedom. Organized brute might can be answered only with organized brute might. Moreever, creativity is, fortunately, inherent in human spirit. It has survived long periods of regimentation and there is no reason why it should not co-exist with a 'do-or-die' attitude.

Scepticism about military training raises its head in still another form.

There are certain pacifists, noble souls, no doubt, who claim, that compulsory military training, if carried out energetically, does ultimately make a nation militant. Its members degenerate, over a long period of time, into a gang of fighters, itching to fight for its own sake, to conquer and to die in the battle-field. It is dishonest to deny validity to this danger and the need of a close guard against it. If we always lay stress on the fact that we are being trained not for imperialistic adventures but for self-defence, the above danger can certainly be minimised.

Next, I would like to draw your attention to the problems faced by the N. C. C. I have no desire of leaving you with the rosy impression that all is well with the N.C.C., that it is achieving what it is calculated to achieve and that nothing more needs to be done than, perhaps, praying fervently for its success. To make the N. C. C. training truly effective, we need a band of sincere officers, inspired with zeal for its aims, students taking genuine interest in its multifarious activities and coming with the attitude to learn, not to resist, and, finally, authorities who are not only sympathetic and co-operative but also ready to deal firmly with those who show slackness in the performance of their duty and those who offend against the $N, C, C$. disciplinary code, in short, men of quality. In the beginning of my paper, I commented on the quality of our people. The greatest crisis afflicting our country, today, is the dearth of men of quality. And this
is no less true of the N.C.C. Many of the N. C. C. officers are without a sense of mission; they have accepted this responsibility not because they are enthusiastic abcut its value but because it increases their spending capacity. Most of the students consider the N. C C. training a drag, a huge practical joke. They try to find out ways, not of obedience, but of disobedience, not of obeying regulations but of evading them. It is a depressing sight to see our young men and young women, the hopes of our country, turning into petty politicians, petty liars, cheats, petty scoundrels. The college and university authorities are scared of agitations, and therefore, resort to playing down to, even pampering, the defiant youngsters. The result is that resources spent on the N. C. C. are more wasted than utilized.

Yet a way has to be found out of the present gloom. Frustration and despair will only make us more impotent than we are at present. What is the way out? Doing away with the element of compulsion will not help. It will show defeatism and lack of perseverance and courage. Today we need military training more than we did ever before. Our freedom and dignity are in danger. The intransigence of the Chinese Dragon is on the increase. Lately, it has shed off its posture of peacefulness and given a defiant display to a return to its old tactics of fraudulent claims and arrogance. Its monstrous teeth and tongue are greedy to bite off considerable limbs of Mother India and emasculate her. We have to accept its challenge man-
fully and give it a crushing defeat, if we wish to survive as a free nation. Furthermore, Mother India needs hard, honest work from her children for her well-being and progress. Compulsory military training, as pointed out earlier, is one of the ways to strengthen our young men and women. We must strive to make it a grand success.

For ensuring its greater effectiveness, I submit the following suggestions for your consideration:-

1. Our Parliament should enact a law making military training compulsory for all the youths fo eliminate uncertainty and to save the N.C.C. from depending too much on the forbearance of university authorities.
2. Military training should be made a compulsory subject, in all schools and colleges, for the award of any diploma or degree, i. e., a minimum of $50 \%$ marks must be secured by a student in this subject, before he is eligible to appear for any examination,
3. Military training should be made an essential qualification for new recruitments to government or
quasi-government service.
4. All the organs of propaganda and publicity should be mobilized in its service. The radio, the press, the public platform, the cinematographic screen, all should be employed to arouse interest in and enthusiasm for the N.C.C. in the hearts of all citizens.
5. More resources should be made available to the N.C C. to ensure that every cadet attends at least one camp of the duration of a fortnight in a year.

The above measures may appear revolutionary but deep-seated diseases demand radical cures. I sincerely beleve that the time has come to give up our half-hearted and wavering approach to the $\mathrm{N} . \mathrm{C} . \mathrm{C}$.

I would conclude, gentlemen, by hoping that this paper will compel you to think seriously about the N. C. C. training and that this conference will help in creating intelligent public opinion on the N. C، C. training and in mustering greater support for its aims and activities than is evinced at present.

Do you want the fragrance of the full-blown Rose? If so, you must accept the thorns, Do you want the sweetness of the smilling dawn? If so, you must tive through the dark hours of the night. Do you want the foy of liberty and the solace of freedom? If so, you must pay the price and the price of the liberty is suffering and sacrific.

Subhas Chandra Bose


UIN


U/O Sarkar Mohan attended the
All India Advance Leader N.C.C. Camp
held at Kurseong in June, I 1964 .
He was declared the best Rork Climber


# From a Cadet To An Officer 

Lalit Kumar Ohri, 2|Lt. (31 Heavy Motor Artillery), Old Student



The Indian Military Academy is a world unto itself. It has its own lords and laws, customs and conventions, tones and tempers, its own code of conduct and morality, and above all, its own pet idiom, A particular set of words keeps on reverberating in the company lines day in and day out. We exult in the use of these words and phrases with an abandon which is at once joy uninhibited and awful. We use them often as a matter of habit, sometimes for fun, and occasionally out of necessity. But it is always and everywhere-just to be out of one's room is to be seen by a senior, to be seen is to be summoned, and to be summoned is "to hove it".

But the most alarming, though less offending, is that 'O, you'. Suppose you are just back from a night exer-
cise (and had to carry an L.M.G.) and are pacing towards your room quietly, broken and exhausted. All of a sudden some one shouts "O you". You stand, stand still, stunned. Your heart sinks, blood freezes. But you turn back in response with the ferocity of a tiger coupled with the helplessness of a lamb.

The new-comers feel, and quite naturally, cut to the quick, writhing under these unprovoked, unqualified, unwarranted agonies and insults. If you protest you find yourself suffering the penalty in terms of "front rolls" and 'haunching'. It is sometime argued that you can never attune yourself to the tempo of the I.M.A. so long as you are not willing enough to adopt its idiom readily. The argument is very nice but quite absurd. It is said that these words and phrases serve as mental and emotional "shock" which cures the new-comers of their vanity and egoism and makes them draw a curtain over their past career. A remarkable piece of sophistry! But, all the sound and fury of this otherwise unflattering idiom can never be wholly and solely without sense. The words and phrases can never be mere words.

Those who employ this kind of vocabulary for sheer fun are not wholly wrong. There is a kind of pleasure know as 'sadism' and no one has the right to check those who choose to
partake of this bliss. Besides, these phrases are a means of easy evasion. For, instance. if some one ask you the name of the picture showing at the cinema hall and if you do not know, you just say, 'domm it' and there you go without loss of face. The one who puts the question is left considering the propriety of his own question.

But the most important function that these idioms perform is that of effecting 'Catharsis'. Any attempt at explaining the meaning of the word 'catharsis' (used by Aristotle) is a cock-pit of critical controversy. It would suffice to demonstrate rather than define 'catharsis'. When we weep we effect the 'catharsis' of the feeling of sorrow (or joy). In other words, 'Catharsis' is letting off steam which hangs heavy on our hearts. Now. if we are enraged and aroused, we 'shout out' and we are again our normal selves. On the contrary, if we choose to be too civil to shout, the virus will eat into our very being. More-
over, shouting at others is quite harmless. Thus you save your own self without killing others. In the case of.gentlemen cadets, there are perhaps, only two occasions when they feel provoked. One, when they check their juniors and two, when they are checked by the seniors. Suppose you are checked on the drill square and have earned a welcome award of four extra drills you'thurry to your room, catch hold of the nearest junior and pour out of the vials of wrath. In a few moments, there you are 'calm of mind', all passions spent. If a senior checks you, he gives you 'round the clock', if he is strict. But if he is wiser, he prefers to shout -out at you, and that is the end of it. He knows that 'round-the-clock', like mercy, is twice-blessed. It blesses both the giver' and the taker. Thus thanks to this idiom for its 'Cathartic' effect !

To conclude the I.M.A. is good with its idiom. But it may be better without it. Who knows ?
"Nations are not immortal. They are not the permanent possessors of this planet. They are its temporary tenants. They will last long if they adhere to the moras jaw. The donm of nations cannot be delayed so long as the cupidities of man persist. Nations aim at permanence. We know, however, that all great societies perished leaving behind the great heritage of arts and skills, ideas and ideals on which we shall build. No society dies in vain. All living things die but out of death comes life."

Dr. S. Radhakrishnan

# The Role of the N.C.C. in National Emergency 

2/Lt. D. S. Mann, M.Sc.

India won her freedom in 1947. Thousands of young men and women of our country watered this plant of freedom with their sweat and blood. Freedom brings in its wake a great sense of duty and responsibility. We have to preserve it at all costs. It has become all the more important now when China has committed naked and brutal aggression on our motherland. So it is the duty of every citizen of this country and particularly the youth to rise to the occasion and test their mettle and patriotism in defending the freedom of their country. We should no longer depend on the help of other countries. We have to stand on our own feet, help ourselves and fight anew the battle for preservation of our freedom. When a country is faced with such a situation, it is the responsibility of the entire nation to prepare herself and harness all her forces for the struggle. This is possible only if there is national awareness in the mind of every citizen of the country, and the nation is converted into a body of fine, able and disciplined people who have so much love and are so much devoted to their motherland that they are ready to sacrifice their all whenever the occasion demands it. Hence our ccuntry now needs a body of young men and women with a high sense of duty and discipline, strong charac-
ter and firm will to preserve and maintain her hard-won freedom. For this our young men and women have to undergo the type of training which will help them to acquire these qualities. It is an admitted fact that the most important and impressionable period of one's life is the one which one spends in schools and colleges. It is at this delicate age that N. C. C. takes charge of our young boys and girls.

The Cadet Corps Organization was established mainly as a youth organization and was meant to be an integral part of the educational activity. It was set up in April, 1948, by an Act of Parliament which laid down the following three basic and golden aims:--
"First, to develop character, comradeship, the idea of service and the capacity for leadership in young men and women of our country.

Secondly, to provide service training to young men and women so as to stimulate their interest in the defence of the country.

Thirdly, to build up a reserve of potential officers to enable the armed forces to expand rapidly in the time of a national emergency."

Thus N. C. C., the premier youth movement of the country, has to play a vital role in military as well as civil defence of the country. This organization can impart to our youth the kind of training which may develop in them a strong sense of discipline-collective and mass dis-cipline-a fine spirit of team work, devotion to duty and keen sense of responsibility. It can build up a healthy race and can help to infuse into the hearts of individuals the spirit of self-sactifice, the love of the motherland, the rule of discipline and the virtue of courage and heroism.

The character of a nation depends much upon the character of its citizens. The students of today ate the citizens of tomorrow. It is in this context that the N. C. C. has to play an important role. There are two main agencies which mould the character of an individual-one, the
mother and the other, the teacher. The N. C. C. officer is a teacher first and last and hence it is his foremost duty and solemn responsibility to ensure that the students he trains, develop qualities which are useful, essential and vital for future citizens of the country. If the teachers rise to the occasion, the students are bound to respond and react enthusiastically.

It is, therefore, in the fitness of chings that the Government has made the N.C.C. training compulsory for all the able-bodied students of all the Universities of India. It is sure to supply the ever-increasing demand for manpower by the Armed Forces of the country and is, in the end, bound to pay very rich dividends in the years to come by evolving a new generation of disciplined youth, trained to face any danger and eventuality with fortitude, courage and a smiling face.
"It takes sound judgment and self-discipline to use freedom wisely. But on the other hand, these are the very qualities that are forged when people have to submit their ideas and institutions to the furnace of debate. For, as John Milton said: 'Who ever knew Truth put to the worse, in a free and open encounter ?' '"

## About the N. C. C.

Lt. D.S. Chaudhry: Officer Commanding

Compulsory NCC training is proving a success in the college. Boys and Girls have accepted the challenge. The NCC movement and training are national in character and this creates a feeling of oneness. The wearing of uniform inculcates a sense of pride and 'esprit de corps.' Camps and other forms of collective NCC training help in the development of a corporate life Cadets are taught how to work as a well-knit team. The practical training, which they receive in camps, makes them mentally agile, physically tough and develops in them a spirit of adventure, resourcefulness and they learn to appreciate out-door living.

NCC in our college has been steadily expanding since its inception in 1959. Now we have got three NCC Companies for boys. three companies for girl cadets, one Naval troop and one Artillery troop.

On the 14th of August this year cadets of all wings attended the 'promise parade' and took a pledge to serve the country honestly and faithfully. Our principal, Dr. Amba Prasad, took the salute at the parade and stressed the need and importance of NCC training for the youth of the country and congratulated the cadets for their good turn out and fine discipline. All the members of the staff were present on this occasion.

Three of our Boy cadets went to the All India Summer Training Camp at Shillong during the last Summer Vacation and brought good reports from the camp authorities. Some other cadets went for advance leadership and mountaineering courses. Sgt. Om Parkash Kohli who has already completed the Basic Mountaineering Course will be going for advance Mountaineering Course to Darjeeling in November, 64.

NCC Boys and Girls took part in the Independence Day celebrations for the first time this year at the Red Fort on 15th August, 64.

100 Boys and 70 Girl cadets from our college took part in the function. They stood like pucca Army soldiers in spite of the heavy rain at that time.

250 of our girl cadets attended the Annual Training Camp at Dagshai (Simla Hills) from 28th May, 64, to 7th June, 64. They won the maximum number of prizes mentioned below:-

1. Inter Coy Drill

Competition I prize
2. Inter Coy Drill Competition

II prize
3. Best Shot First Prize won by Cadet Harjeet Kaur
4. Best Shot Second prize won by Cadet Prabha.
5. All round Control and Command First Prize by S.U.O Sudershan Gupta
6. All round Control and Command Second Prize by C.Q.M.S. Shabnam Abdali

Entertainment and Cultural prizes were won by L/Cpl. Sarojini Kapoor, $\mathrm{L} / \mathrm{Cpl}$. Rajeshwari and $\mathrm{L} / \mathrm{Cpl}$. Tejinder Kalra.

Our present U.O. Abdali also won the Best Instructor's prize in the All India Summer Training Camp.

Our S.U.O. Sudershan Gupta commanded the ceremonial parade (in the camp) and C.S.M. Shukla and Sgt. Suman Bagga were selected as Pilots, Major General Virendra Singh, Director General NCC, inspected the parade.

Our congratulations to all these cadets.

## New Appointments

Sub.Lt. J. K. Jain, Lecturer in English, completed his Pre-Commission training at Cochin and is now back with us. We hope that our Naval wing NCC will do better now under his guidance.

Two of our own Girl Students and old NCC cadets, namely Miss Sudershan Gupta and Miss Sneh Prabha Gulati, have been appointed
on whole-time basis as Cadet UnderOfficer and Sergeant Major respectively.

Lt. D. S. Chaudhry O. C. bas completed one month's Reftesher Training Course at the Officers' Training School, Kamptee (Nagpur). He secured good grading and brought a creditable report from his officers. Our congratulations.

## Lecture on Mountaineering

Col. B.S. Jaiswal, Principal. The Himalayan Mountaineering Training Institute, Darjeeling, addressed our cadets on the 16th of September, 64 The lecture was not only full of information but it was also quite inspiring for the cadets. Our thanks are due to the NCC Directorate, Delhi, for arranging this lecture. We are equally grateful to Col. Jaiswal for having been in our midst and fot arousing interest in our cadets for mountaineering.

## The N.C.C. Day

The N. C. C. day was observed on the 15th Nov., 64, at our college. Col. Qadam Singh, Director N. C. C. (H. P. and Delhi) presided over the celebrations. The function began with the hoisting of the N.C.C flag by him. He then inspected the Guard of Honour and later took the salute at the March-past by 850 cadets (Boys \& Girls) of our college.

Speaking on the occasion, he said that he was full of appreciation for
the keen interest in the N.C.C. that the Principal and the N.C.C. Officers were taking. He said that he always felt happy when he came to Deshbandhu College because the N.C.C. training was being conducted here with great enthusiasm and seriousness. He congratulated our college on having contributed the largest number of officers under Emergency Commission in Delhi. He also assured us that he would provide us with the P. I. Staff of a better quality.

The function ended with a short variety entertainment programme in which the delightful performance in mono-acting, given by Mr. Tillon, stood out.

We wish to express our appreciation for the Multipurpose Higher Secondary School. Kalkaji, Band, smartly dressed and disciplined young members of which captivated our hearts by their enthusiastic and capable performance. We are grateful to Mrs. Gogia, the Principal, for having contributed this element of colour to the celebrations.

## The Annual Training Camps

The Annual Training Camp for our Army Wing Cadets was held at the Jamia Milia grounds at Okhla from 30th December, 1964, to 8th January, 1965, both days inclusive. The camp was not compulsory for the final year cadets who had already completed the required number of NCC parades.

Our cadets learnt a lot from camp
life. The camp was set in tents in the grounds of the Jamia Milia and it was a thrilling site jn healthy surroundings. Much stress was laid on the training of the cadets. Rigorous military training was imparted to them; especially out-door exercise. Many of them did their 3.3 Rifle Firing for the first time and it gave them much confidence. In spite of the biting cold winds and slight rain on one day the cadets took the training like regular, trained soldiers.

A Camp Fire was held on 7th January, 65, at night. A number of guests were present. Principal (Dr.) Amba Prasad's presence gave much encouragement to our cadets. Prof. M. Mujeeb, Vice-Chancellor of the Jamia Milia, gave away the prizes. He praised the turn out and discipline of our cadets. He also addressed them once. Practically all the prizes were won by our cadets. Daljit Singh won the 2nd prize in Best Shot competition. Our P. I. Staff and cadets deserve congratulations.

The Annual Artillery Camp of our cadets was held at the Humayun's Tomb from 24th December, 64, to 2nd January, 65. Even though their number was small, yet they won $50.1 \%$ prizes in the camp activities.

## The Republic Day Camp

24 Boys and Women cadets have been selected from our college from the various NCC wings for the Re public Day Contingent for this year's parade.

Lt. D.S. Chaudhry has been selected for the Mediaeval-Dressed Contingent. He is the only NCC officer to be selected from amongst the officers in Delhi.

Miss Sudarshan Gupta, Under Officer Instructor, of our college has
been selected from amongst the Women Instructors in Delhi for the Republic Day parade.

Our heartiest congratulations to Lt. D. S. Chaudhry and Miss Gupta for winning the coveted honour.
"If you can talk to crowds and keep your virtue
Or walk with kings-nor lose the common touch, If neither foes nor loving friends can hurt you, If all men count with you, but none too much, If you can fill the unforgiving minute, With sixty seconds' worth of distance run, Yours is the earth and everything that is in it, And which is more-you will be a man, my son."

## Rudyard Kipling

"Everything loves everything for ever Always all things love all living things So long as we never fear each other.
And what's there to fear each other?
And what's there to fear? If we all truly Love each other, there's nothing to fear.
For what we fear most of all is this :
Not to be loved."
George Barker

हिन्दी-विभाग

निबन्ध घीर्षंक

लेखक
पृष्ट सं०
कहानियाँ
१. पागल
... श्रनिल कुमारी सक्सेना
19
२. चिथड़े
... तेज कृष्या भाटिया
२६

कविताएँ

| ?. | शायद | ... | शक्तिबाला सूरी |
| :---: | :---: | :---: | :---: |
| 2. | ग्राकाँक्षा | $\cdots$ | भीमसेन मित्तल |
| ३. | नुमायश | ... | प्रेम प्रकाश बत्रा |
| ૪. | चाँद ग्राज विश्राम करो तुम | $\ldots$ | देवीदयाल गुप्ता |
| 2. | लो ग्रन्तिम पन्ना भी पलट गया | $\ldots$ | तेज कृष्णा भाटिया |
| $\xi$. | चार तुक्तक | $\ldots$ | त्रिभुवन कौल |

विबन्व
१. ब्राह्मया श्रौर कर्म
... श्री राजेन्द्र शार्म
४
२. हिन्दी साहित्य में श्रृंगार रस ... २०
3. प्रगति--शील साहित्य
.... डा० रामदत्त भारद्वाज

## हास्यव्यंग

१. एग्जामिनेशन--एक महावली राक्षस ... वीरेन्द्र पहूजा ११
२. यह भी एक कला है ... मोहलनसंसह ग्रालुवालिया १४
3. दो भलकियाँ ... रमेश कुम!र चित्रा ३०

संकलन

| १. दौ राजनीतिजों की श्यमर वारी | $\ldots$ | सम्पादक | १६ |
| :--- | :--- | :--- | :--- | :--- |
| २. ज्ञान | $\ldots$ | निर्मंल कान्ता | २४ |
| ३. 'विवेकानन्द वारी़ | $\ldots$ | चानन लाल | २४ |


‘देशः 'पन्रिका का इस वर्ष का प्रथमांक स्रापके सम्मुख प्रस्तुत करते मुभे श्रत्यन्त हर्ष हो रहा है, क्योंकि यह पत्रिका हम सबको श्रात्मीयता के सूत्र में बाँधने का एक माध्यम है और यही कारएा है कि यह उत्तरोत्तर सफलता के मार्ग पर ग्रग्रसर हो रही है।

यह प्रसन्नता एवं उ₹साह का विषय है कि इस वर्ष जो रचनएए प्राप्त हुई हैं वे संख्या एवं स्तर की हृष्टि से प्रशांसनीय हैं, एवं विद्याधियों की हिन्दी के प्रति बढ़ती रुचि का स्पष्ट प्रमाएा है। मैं उन नवोदित प्रतिभाशाली कलाकारों का ग्राभारी हूँ जिन्होंने ‘देश’ पश्रिका के कलेवर को सुसजितत एवं सुझोभित करने में मुभे ग्रपना सराहनीय सहयोग दिया है। जिन लेखकों की रचनाएँ कारएवश प्रकाशित नहीं हो सकी उनसे मेरा ग्रनुरोध है कि वे निराशा न हों :-
'"जंग में लड़ते हैं शाह सवार, वह गिरेगा ही क्या जो चलता घुटनों के भार।"

इस कालेज में नवप्रवेश पाने वाले छ्रात्र एवं छात्राएँ जो ग्रपने ह्दय में रात-इत मनःकामनाएँ एवँ ग्राशाएँ सँजोकर श्राए हैं उनके प्रति मेरा हार्दिक ₹्वागत एबं सुभकामनाएँ प्रस्तुत हैं।

प्रस्तुत श्रंक में समयानुकूल एवं विभिन्न रुचियों से सम्प्न्न कविताएँ, मनोवैज्ञानिक एवं रचनालमक कहानियाँ, साहितियक लेख, संकलन एवं व्यंग्यानुकृत्तियाँ समिम्मिलत हैं। इन रंग-विरंगे फूलों से सुसजिजत यह सुन्दर गुलदस्ता सौंद्दर्य एवं ग्राकर्षणा का केन्द्र बनेगा, ऐसा मेरा विशवास है।

धन्यबाद।

तेज कृष्एा भाटिया

## 

शक्ति बाला सूरी बी० ए० हिन्दी (ग्रनसं) ग्रन्तिम वष्षं

नहीं किसी ने शायद समभी मेरे मन की बात। इसीलिये अन्तर में छाई काली काली रात।।

नहीं किसी ने शायद् परखी मेरे मन की पीर, नहीं किसी ने शायद़ निरखी श्रन्तर की तर्व्वीर। नहीं किसी ने नुछ्रा पुभे है ॠ्रपने उर के हाथ से, पर पैरों में बाँधी सबने जुन्मों की जंजीर।

इसीलिये नयनों में छाई बेमौसम बरसात । नहीं किसी ने शायद समभी मेरे मन की जात।

नहीं किसी ने जाना सुभको ग्रपने मन का मीत, नहीं किसी ने माना गुक्कको ग्रपनेपन का गीत। नहीं किसी ने दुत्रा मुभे दी दुख की सची हार में, किन्तु गले में बाँधी सनने धुख की भूठी जीत।

इसीलिये, प्रिय, जोवन मेरा बिन जनवास बरात।
नहीं किसी ने शायद् समभी मेरे मन की बातः

## ब्काद्मनान <br> श्र्रैए कर्म

श्री राजेन्द्र शर्मा एम० ए०

> के दिक तथा लौकिक साहित्य के म्रध्ययन से स्पष्ड हो जाता है कि प्राचीन समय में व्राह्मशों को बहुत्ता ग्रादर तथा सम्मान प्राप्त था। इतना ही नहीं हातपथ ब्वाहाए में तो उन्हें देवताओ्रों का स्थान प्रदान किया गया है। यह ग्रंध देवताप्रों को दो श्रेखियों में विभाजित करता है, एक वे जो कि स्वर्ग में निवास करते हैं हैंर स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं, दूसरे वे जो पृथ्वो पर निवास करते हैं च्रौर दान तथा दक्षिराग्रों के द्वारा प्रसन्न होते हैं। पुन: ऐदरेय ब्रामहएा के ग्रनुसार जिस राजा कर पुरोहिज बाहम ला नहीं होता, उस राजा की हानि को देवता ग्रह्या नहीं करते थे। जनसाधारएा के हृदय में ख्राहम साों के प्रति ग्रादर देख कर यह् परन उठना स्वाभाए क्र ही है कि उनका उस काल में इतना सम्पान क्यों था? उनका यह श्रादर ब्रंहमयावर्यां में जन्म लेने के काररा था या कर्म घथवा गुयों के कारखा ? ब्राह्मया जञ्म से थे या कर्म से ?

प्राय: पइचाश्य तथा भारतीय मनीषियों का मत है कि ॠृत्वैदिक काल में समाज का विभाजन कर्म पर भ्राधारित था श्रर्थात् त्राह्माए कर्म से होता था। इन विद्वानों नं कग्वेद के पुरुषसूक्ष में बतलाई गई वर्यां्यवस्था को कमं पर अ्राधारित माना है। पुरुषसूक्त के ग्रनुसार ब्राह्मया, क्षात्रय, वैस्य, ग्रहद्राद वर्गों की उत्पर्पत कमश: विराट् पुरु के मुख, हृध्थों, उदर तथा पादों से हुई। इस प्रकार व्राह्माएा का सम्बन्ध मुख से होता था। ब्राह्मया मुख के द्वारा ही रिक्षा दे सकता था श्रोर ब्रह्म (वेद) का गान कर सकता था। यहाँ मुख का म्रर्थ पठन-पाठन भी किया जा सकता है। इसी प्रकार क्षत्रिय हाथों से

विजय प्राप्त करता था ग्रोर वै₹य कृषि.ठयापार इत्यादि करके ग्रन्य वर्शां का पेट भरता था। शूद्र का कार्य ब्राह्मएा तथा सून्र ग्रन्थों में सेवा बताया गया है इससे उसका समन्न्ध पादों से है। अतः यह स्पष्ड है कि ॠत्वैदिक काल में ब्राह्मा कर्मं से होता था। जो व्यक्ति पोरोहिल्यादि कार्य करता था द्रोर वेदों का पठन-पाठन तथा उच्चाराया करता था वह ब्राहम का कहलाता था। ब्राहमया वर्गां के कर्म पर अ्राध्रित होने के कारगा ही वि₹रानित्र श्रोर देशापी पुरोहित छन सके यद्यधि के भ्रत्रिय थे ।

इनना स亏 होने पर भी ॠग्वेद के प्रनेक स्थल यह् प्रमाशित करते हैं कि कर्म के साथ-साथ जन्म का भी ध्यान रखा जाता था, ग्रर्थात कर्म से ही ब्राह्मगा ब्राह्मगा कहलाता था। बाद के वेदों म्रोर ब्राहतयों में ब्राहमया जन्म से हो कहलाया गया है कर्ं से नहों। सूत्र ग्रत्थ भी ब्राह्माग के कुल में जन्म लेने वाले उर्यक्ति को ब्राह्मा संज्ञा देते हैं। परन्तु महात्मा बुद्ध जन्न से ब्रह्हाया नहीं हैं मानते वे तो उसे कर्म से हो मानते हैं। मानिभक्भनिकाय में एक कथा ग्राती है जिसमें वfिष्ठ आ्रौर भारद्वाज नाम के दो युवकों में 'बाह्मया' वर्शा के विजय में वाई विषाद होता है। वसिष्ठ के श्रनुसार ब्राह्माए जन्म से होता है औौर भारद्वाज ब्रह्हाएा को कमं से मानते है। वे दोनों महाईमा बुद्ध के पास जाते हैं ग्रौर उन्हें इस विषय में निर्गाय देने के लिए कहते हैं। महात्माः बुद्ध कर्म के पक्ष में निर्खाय देते हैं।

ग्राह्माए चाहे कर्म से हो या जन्म से, उपनिषद्द सूत्र तथा बौद्धग्रथ्ध सच्चा ब्राहम $\begin{gathered}\text { स } \\ \text { उसी को मानते }\end{gathered}$ हैं जिसमें गुया हों । ग्रब यह प्रश्न सामने झ्राता है
fि ब्रह्मया के वे गुए कौन से हैं ? विद्या ब्राह्मरा की आ्राभूषरा मानी गई है। छान्दोग्य में इवेतकेतु के पिता ने उससे कहा है कि हुमारे वंश में ऐसा कोई घ्यक्ति नहीं हुग्मा जो कि वेदाध्ययन के बिना ब्राह्मया फहलाया हो। इसलिए तुम वेदों का श्रध्ययन करो। पुन: निडर होंकर सत्य बोलना भी ब्राह्मएा का गुए माना जाता था। जब सत्यकाम बालक शिक्षा प्राप्त करने के लिये गौतम ॠषि के पास गया तो ॠषि ने उससे उसके वर्गां के विषय में पूछा। सत्यकाम को इसका ज्ञान नहीं था इसलिए वह ग्रपनी माता के पास गया ग्रौर ग्रपने पिता के विषय में पूछा । उसकी माता ने कहा कि जब मैं एक समय क्ऱषियों की सेवा कर र्ही थी तब तेरा जन्म हुग्रा था। परन्तु तेरे पिता के विषय में मुभे कुछ याद नहीं है। सत्यकाम ने यही बातें गौतम को सुनायों। गौतम उसके सत्य भाषएा से प्रसन्न हुश्रा ग्रौर बोला कि यह बालक ब्राह्मगा ही हो सकता है ग्रन्य नहीं, क्योंक ब्राह्मए ही निडर हो सत्य बोल सकता है। अ्रत: सत्य बोलने के गुएा से ही गोतम ने श्रनुमान लगा लिय। कि यह ब्राह्मया पुत्र है।

वसिष्ठ धर्मसूत्र उसे सच्चा ब्राह्वया मानता है जिसमें योग, तप, दान, स्य, शौच, विद्या, विज्ञान, झ्रास्तिक्यादि गुएा हों। इसी ग्रन्थ के श्रनुसार जो ब्राह्माए दीर्ष रान्रुता, ग्रसत्य, निर्दयता, चुगलखोरी इत्यादि से युक्त होता है उसे घूद्र समान मानना चाहिये । शान्त, जितेन्द्रिय, अंह्रंसक तथा प्रतिग्रह लेने में सकुचाने वाले ब्रह्मरा जनकल्यारा करने वाले कहे गये हैं। शुद्ध श्राचरग त्राह्मगा का श्रत्नन्त ग्रावशयक गुणा माना गया है। श्राचार होन ॠ्राह्मशा को वेदों का षड ड़्रों के साथ ग्रध्ययन भी

हर्ष नही पहुँचता जिस प्रकार कि एक सुन्दर भार्या ग्रन्धे पति को सुख नहीं पहुँचा सकती। बोधायन तो वेदविह्हीन ज्रहह्मएा को लकड़ी के हारी श्रौर सर्म के मृग की तरह नामधारक मानता है।

महाल्मा बुद्ध भी रील सम्पन्न ग्रौर कोध, राग, द्वेष घृरा।ि से रहित मनुष्य को सचच्चा ब्राह्मरा मानते हैं । उनका कहना है कि में गम्मीर बुद्धि वाले उस व्वक्त (ब्राह्मरा) को सच्चा ब्राह्मरा मानता हूँ जो कामनाश्रों के बझीभूत नहीं होता।

जातक कथाग्रों में एक कथा ग्राती है जिसमें एक राजा का पुरोहित, जिसका राजा द्वारा बहुत श्रादर किया जाता धा, यह्ह जानने का प्रयरन करता है कि उसका सम्मान उसके गुएांं ग्रौर शील के कारग है या कि ब्राह्गाए होने के काराए। इसको जानने के लिए उसने चारी की, जिसके फलर्वहूप वह पकड़ा गया और दणिडत किया गया। इस प्रकार उसे ज्ञात हुग्रा कि उसका सम्मान उसके ग्रच्छे चरित्र तथा गुएों के कारएा था न कि उसके ब्राह्मरा होने के कारशा। श्रत: गुएाों से ही ब्राह्मएा सच्चा ब्राह्मएग होता था ।

इन सब गुएगों के कारगा, यर्ञािधियों के ज्ञाता होने के कारखा तथा रिक्षक होने के कार्रा बंह्मागों का समाज में श्रादर था, परन्तु जैसे जसे उनमें गुएगों की कमी हुई उनका सम्मान भी घटता गया। इन्हों गुएाों के ग्रभाव के कार खा ब्राह्मएा ग्राध्युनिक काल में ग्रपने प्रचीन सम्मान को प्रव्त न कर सके ग्रौर वे ग्रपने को ब्बाह्मता कहने में भी घबराते हैं।

मिल कर इक संसार बनाएँ, जो इस दुनिया से न्यारा हो।
हरी भरी हो भूमि जिसकी
नदियों की शीतल धारा हो,
सभी जीव मनमोहक से हों
करा करा चन्दा सा प्यारा हो।
मिल कर इक संसार बनाएँ, जो इस दुनिया से न्यारा हो।
भर-भर भरते हों नित भरने
पर्वत की सुन्द्र माला हो,
यमुना सा निर्मल पानी हो
या गंगा सी इक धारा हो।
मिल कर इक संसार घनाएँ, जो इस दुनिया से न्यारा हो।
मधुर राग पंछ्धी गाते हों
तारे नभ को चमकाते हों,
चन्दा की किरऐों नित हरती
पीति नगर का ॠँधियारा हो।
मिल कर इक संसार बनाएँ, जो इस दुनिया से न्यारा हो।
जहाँ वियोगी की ग्राहें ना हों
विरह व्यथा की राहें ना हों,
प्रेम पनपता हो निर्भय सा
भीति विहंग श्रति प्यारा हो।
मिल कर इक संसार बनाएँ, जो इस दुनिया से न्यंरा हो।
धनी न निर्धन को खाता हो
प्रेम श्रहिंसा का नाता हो,
जाति पाति न वर्ग-भेद्द हो
मानव को मानव प्यारा हो।
मिल कर इक संसार बनाएँ, जो इस दुनिया से न्यारा हो।
भीति नगर हो प्रीति भवन हो
प्रीति गंध से घुक्र पवन हो,
प्रीति की बोली प्रीति की भाषा
प्रीति दीप का उजियारा हो।
मिल कर इक संसार बनाएँ, जो इस दुनिया से न्यारा हो।

## पा ग ल

ग्रनिल कुमारी सक्सेना, बी०ए० (ग्रानसं) द्वितीय वर्ष

कोलाहल से भरी सड़क पर ग्रकेला चला जा रह! था निझीय ! नहीं जानता था कि कहौं जा स्रा है वह, श्रौर कितना लम्बा है उसका मार्गे। उसे एक मरीन की भाँचि कोई श्रज्ञात शाकि घसीटे जा रही थी ! जहाँ भी गया, निरारा ही हाथ लगी। सारे सुख-स्वष्न बिखर से गये थे! जीवन की निराशा ने उसे निचेष्ट बना दिया था। नौकरी की तलारा में घर से निकला था, ग्रौर जहाँ भी गया उदास, पीला मुंह लिये लौट श्राया । घर में कुमरी बहन, विधवा माँ तथा भाभी त्रौर भाभी के नन्हे ? चार मासूम बच्चे ! ग्रथ्थत् कुल मिलाकर ग्राठ प्राशिएयों की उदर-पूर्ति का प्रशन था निशीय के समक्ष! रोज़ ग्राइंच्वसन से भरे पत्र लिखता मौ को वह, परन्तु माँ को ग्राशा दिलाते दिलाते उसकी ग्रपनी ग्राशां भी जवाव दे चुकी थी; वह थक चुका था इस जीवन से । फिर भी जीवन का बोभ उसे ढ़ोना था हैंस के क्रथान रो के !

भुटपुटा हो चला था! परिचम के घ्योम में मानों किसी ने लाल रंग विखेर दिया हो! लालिमा लिए सुनहरे रंग में डूना था सारा संसार, ग्रौर निइीथ चला जा रहा था मौन ग्रौर उदास ! सहसा वातावरशा में एक ग्रट्ठहास गूँज उठा • हा: ${ }^{\prime \prime}$ हा: हा: हा: । श्रौर निशीय चौक पड़ा मानो सोते से जाग गया हो ! सामने देख। एक पागल, ग्रस्तव्यस्त विखरे हुए बाल श्रोर चिथड़ों से लिपटा हुभ्रा क्रहा रारीर । चह कह रहा था …… देखो मैं बी०ए० पास हूँ, बी०ए० फर्सं क्लास… बी० ए० ${ }^{\circ} \cdots$ हा: हा: हा: $\cdots \cdots$ यह देखो मेरी डिग्री $-\cdots$ मैं ग्रेजुएट हू … हा: हा: हा: हा: ।

लोग एकत्रित हो गये। एक ने कहा ‘पागल’ है दूसरा बोला 'चलो यहाँ से' किस पागल के चक्कर में पड़ गए! सहसा पागल चीख उठा ‘कौन कहता है, मैं पागल हूं !' नहीं नही, मैं पागल नहीं हूँ, मैं ग्रेखएट हूं, तुम सब पागल हो, हा:- हा:निशीथ को उस पागल पर दया ग्राई । ध्यान से देखा उसने उसकी ग्रोर। लगभग चौबीस वर्ष की ग्रबस्था, गोरा रंग, पतला शरीर, जो कि विपत्ति की ठोकरें खा कर कृरा होता जा रहा था। तीखे श्रौर सलौने नैन-नकरा, चेह्रे पर बढ़ी हुई दाढ़ी ग्रीर रूखे तथा बढ़े हुए बाल, निरीय की जिज्ञासा जाग उठी ! ऐसा त्राँका युवक, तिस पर यह् पागल पन ! श्रपनी भ।वना पर नियंत्र्रा न कर सका निशीथ! पास ही पान वाले से पूछने लगा यह पागल कौन है ? जानते हो तुम इसे ? "क्या करोगे जान कर बानू जी डसे, गरीब की कहार्नी, बेचारा वदकिस्मत है, भोग रहा है ग्रपने कर्म का फल", पानवाले का का उत्तर था ! किन्तु निशीथ नहीं माना । "बता भी दो न जाने उस युवक में कौन सा अ्राकर्षरा लग रहा है मुभे !" पान वाले ने एक ठंडी श्राह्ह भरी श्रोर बोला, "बड़ी लग्बी कहानी है इसकी, सुनोगे बाबूजी।" 'हीँ"- हौं सुनाश्रो, मैं सुनूंगा-' निशीथ ग्रचानक कह उठा ।
"तो सुनो बाबूजी" पान वाले ने एक पान बनाते हुए कहा ‘नुककड़ वाली कोठी देख रहे हो न बाबूजी, इसमें सेठ दयाराम रहते थे! उन्ही का बेठा है यह नवीन, बड़े लाड़ च्रौर प्यार से पाला था नवीन को उन्होने, चार कच्याग्रों के बाद की सन्तान जो था वह। किसी बात की कमी न थी नवीन को। फूलों की सेज पर पल रहा था,

किन्तु नियति को उसका सुग्व स्वीकार न था! सेठ दयराम को ठ्यापार में घाटा ग्रापा ग्रौर फिर वह दिवालिए हो गए ! लज्जा की भ्राँच को सह्न न कर सके, ग्रौर एक दिन $\cdots$ विष की एक जाम ने ही उनके पाएखों को शरीर से मुक्त कर दिया! अ्रवने भार से तो मुक्त हो गए सेठ दया राम, किन्तु ग्रपने पीछे गृह-भार दे गएवे ग्रबोध नवीन को! एक दिन सुत्रह जब विशव में प्रकारा था, तो नवीन के घर में अ्रैधेरा था! पिता को मृत्यु व मकान, सम्पत्ति की कुर्की ! देख़ता रहा वह मौन निस्तधध, किन्तु कुछ न बोल सका !

सेठ जी की पत्र्नी ओर पाँच मासूम बचन्ते, जो कभी फूलों की सेज पर पले ॠौर दूध की धार में नहाये श्रब दाने-दाने को बिलखते रो रहे थे ! किन्तु कौन था जो उनकी सुनता। निर्धन के ग्राँसू पोंछने वाला कौन होता है ! माँ की इच्छ्छा थी कि नवीन पढ़े श्रौर पढ़-लिखकर नोकरी करे! इसके लिए उसने क्या नहीं किया ? लोगों के बर्तन माँजे, जूठन उठाई औौर नगना भकार की भिड़कियाँ सहीं, केवल ग्रपने बचचों की उदर-पूर्ति के लिए, तथा ग्रपने नवीन की शिक्षा देने के लिए :

नवीन समभदार लड़का था 1 भाग्य की धिडम्बना ने उसे बचपन में ही बचपने से दूर कर दिया, ग्रौर बालक नवीन बालक ने रहृ कर एक प्रौढ़ की की तरह समभदार बन गया। नवोन दिन भर मेहनत्त करता श्रौर अपने तथा ग्रपने परिवंर के लिए धन कमाता। रातं को जब सारा वालाबर्या श्रंधेरे की चादर ग्रोढ़े विश्राम करे रहा होता, नकीन श्रपनी दुस्त्रक लिए सड़क के किनारे लगे खन्बे के मन्दे प्रकास में पढ़ता रहता। दिन में श्राधा पेट खाकर भी उसके क्रम में बाधा नहीं ग्राती थी। नवीन की मेहनत सफल हुई उसने हाई स्कूल पास किया, इंटर पास किया। उसकी माँ को श्रपना

स्वप्न साकार होता हुग्रा प्रतीत हुग्रा। श्रब नवोन बी०ए० का छात्र था, उसकी लगन ग्रौर बढ़ गर्ई थी। एक दिन वह भी ग्राया जब खुरी से पागल नवीन ने माँ के चरशा छूकर कहा $\cdots$ माँ मैं बी॰ ए० पास हो गया ! विधवा माँ की एक ग्राकरेक्षा पूरी हुई। किन्तु उसकी ग्राँखो से दो बूँदें टपक कर नवोन के गालों पर ग्रा पड़ी, मानों वेही उसका ग्राशीवरद हो! नवीन बी०ए० पास हो गया किन्तु ग्रब उसके समक्ष समस्या थी बहन के विवाह की। श्रतः नसीन नौकरी की तलाशा में भटकने लगा : एक्पलययमेंट-ऐक्सचेंज के पच।सों चक्कर लगा डाले उसने ! हर दफतर और हर स्थान की घूल छान डाली उसने! किन्तु नौकरी तो मानो उससे रूठ गई थी ! जहाँ भी जाता ग्रधिकारियों के कभी न भरने वाले मुख खुले रहते! नवीन के पास उनके भरने के लिए न रुपये ही थे श्रोर न सोना चाँदी, ही था। वह दर-दर की ठोकरें खाता रहा, किन्तु नौकरी न पा सका। बी०ए० की डिग्री चाँदी के टुकड़ों के ग्रभाव में उसे रोटी देने में ग्रसमर्थ थी। उधर नवीन नौकरी के लिए भटक रहा था श्रौर इधर विधवा माँ ने चारपाई पकड़ ली! माँ की दवा के लिए पंसे न थे। वह्र भटक रहा था, किन्तु इतने विस्तृत संसार में उसको कोई भी सहारा नहीं दीख पड़ता था। एक दिन निराश लोड रहा था नवीन, उसके पाँव मन-मन भर के हो गये थे। माँ के लिए दवा की चिन्ता तथा पाँच प्रगशिएयों की क्षुधरणनि, थका-मांदा ग्रौर भूख की ग्राग में जलता उदर लिए वह घर वापिस लौट श्राया ! किन्तु द्वार पर पाँँ्र रखते ही वह ठिठक गया। "भैया" मैया माँ को देखो क्या हो गया है ?" किन्तु नबीन ने जैसे कुछ सुना ही न हो ! उसकी बहन नीलम भैभोंड़ती रही-किन्नु उसकी चेतना तो जैसे सो चुकी थी! बाषाएा प्रतिभा की भाँति नड़ रह गया था वंह। नीलम किर चीख

'माँ को देखो भंया, क्या हो गया है इन्हें ?' नवीन यन्न्रचालित सा जा पहुँचा माँ तक! ममतामयी माँ का स्पर्शां करते ही स्तबध रह गया वह! fिंजड़े का पंछी fिंजड़े को छोड़ कर उड़ चुका य! सहसा नबीन ने माँ के चररों पर अपना सिर रख दिया। लड़कियाँ माँ के शव से लिपट कर विलख उठी! एक बार फिर इस घर में काल की क्रूता की पुनरा वृत्ति हो गई थी। किन्तु नवीन तो संज्ञागून्य सा हो रहा था। श्रचानक माँ के चरलों से सिर उठाकर श्रटृहास कर उठा"... हा: हा: हा: हा:
 रोटी न दे सकी, रहने को मकान न दे सकी, तुभे बचाने के लिए दवां न दे सकी - हा: हा: हा: तू कहती थी न माँ कि तू बी० ए० पास हो जा ! देखो मैं ग्रेजुएट हो गया हूं हा: हा: हा: हा:मैं ग्रेजुएट हो गया हूँ माँ ग्रेजुएट हा: हा: हा: $\cdots$ नवीन पागलों की तरह श्रट्टहास कर रहा था, ग्रौर बी०ए० की डिग्री उसके हथ में थी ।

पान वाला यह कह कर रका ग्रौर फिर बोला, .....ग्रौर बाबूजी तब से यह वैसा ही है। इधर-उधर घूम कर यही कहता है कि में ग्रे जुएट हूँ, मैंने फर्स्टं

क्लास बी०ए० पास किया है। पान वाला यह कह कर चुप हो गया ग्रौर निशीथ के मैनों से ग्रॉस
 सहसा एक विकट झ्रह्टहास पुन: चसके मानों में गूँज उठा ${ }^{\circ}$..... हो: हा: हा: हा: $\cdots \cdots$ मैं ग्रंजुएट हू… ग्रीर धमाके की श्रावाज सुनकर चौंक पड़ा निशीय। नेम्र उठाकर देखाए, वह्ही पागल पृथ्वी पर संज्ञ छून्य पड़ा था ग्रीर सिर से रक्त बह रहा था। फिर उसने सुना कोई कह रहा था, पागल मर गया चलो ग्रच्छा हुग्रा, मुक्त हो गय: बेनारा, श्रौर तिशीथ भो टंडी अ्याह भर कर कह उटा कि चलो ग्रच्छा हुग्रा, धरती की छाती से पढ़ -लिखे बेकार का बोभ

 हा: हा: हम दोनों ग्रे जुएट जिन्हें बी०ए० की डिग्री चाँदी के चन्द सिककों के श्रभाव में भोजन न दे सकी ग्रोर वह हैसता ही चला गया"ल. हा: $\cdots \cdots$ हा:-- हा:- ${ }^{-\cdots}$ । एक पागल का स्थान दूसरे ने ले लिया थ।। सब कुछ पूर्वबत् था, संसार का कम चल रह्रा था उसी प्रकार। लोग जा चुके थे किन्तु पान वाला श्रश्रुपूरां नेत्रों से गलपक ताक रहा था, एक मृत ग्रौर एक जीवित पागलः की झ्रोर

घूंघट का पट खोल रे। तोको गीव मिलेंगे 11 घट घट में वोह साईं रमता। कटुक बचन मत बोल रे 11 धन जोबन का गर्व न कीजे।

भूठा पचरंग चोल रे ॥ सुन्न महल में दिया बार ले । ग्रासा से मत डोल रे 11 जोग जुगुत से रंग महल में । पिय पाये श्रनमोल रे 11
कहत कबीर ग्रानन्द भयौ रे।
बाजत ग्रनहद ढोल रे :।

## नु मा य श

प्रेम प्रकाशा वत्रा, बी०ए० द्वितीय वर्ष
है तुम से भगवान, हमारी यही एक फरमायशा । भूले भटके भी श्रब, यहाँ न लगे नुमायश ।।

बिन बुलाये ही घर मेहमान बहुत आ्रा जाते।
फिर से जिन्दा हो जाते हैं मुर्दा रिइते नाते ।।
एक दिवस कहते हैं, पर वे दस दिन रहते हैं। बढ़िया बहुत नुम।यश है, यह बार बार कहते हैं।।

एक महीने का राशन, दो दो दिन में चुक जाता। फिर उधार का भी हमको, खुलवाना पड़ता खाता।।
श्रवना छोटा सा घर, बन जाता एक तबेला । जम जरता मेरे घर पर, ग्रच्छा सासा मेला ।

ग्राए उस दिन एक मित्र के फूका जी के चाचा ।
ऐसा लगा कि जैसे मुँहू पर पड़ा तमाचा।।
किर चाचा ने हमें बुलाकर, यह श्रादेश सुनाया । थके बहुत हैं सुनो हमारी श्रलसाई है काया।।

तनिक तुम्हीं इन सब को श्राज नुमायशा दिखलाग्रो । जाग्रो बच्चो 'प्रेम' भैया के संग, घूम फिर ॠाश्रो।।
शामत श्राई लेकर में उन सबको गया नुमायश ।
ग्रौर वहाँ पर गया ऊब उनकी सुन सुन फरमायश ।।
चुन्नू ने कुल्फी माँगी तो मुन्नू ने जलजीरा । श्रशोक ने फुटबाल खरीदी तो विनोद ने खीश ।। सुरेन्द्र ने कैरम माँगा तो चंचल ने ली माला । मतलब यह् कि शाम हुए तक निकल गया दींवाला ।।

घर ग्राकर देखा, सिग़रेट का भरा टीन था खाली । समभ गया कि चाचा ने पीछे, होली ग्राज मना डाली ।।
हाय नुमायश तेरे काराए, ग्रद्मुत कष्ट उठाये । क्या बतलऊॅँ, तूने हमको कैसे नाच नचाये ।।

हास्य वंग ‘एग्जामिनेशन’—एक महाबली राचस

वीरेन्द्र पहूजा，बी०ए० श्र्त्तिम वर्ष

मार्च का महीना था। जिस भाँति वर्षां काल में नदी－नाले सुरीले स्वर से दौड़ लगाते हैं，उसी प्रकार पढ़ाई बड़े जोरों से चल रही थी। राश्रि का समय था，मैं ग्रवने कमरे में बैठा विद्युत् के प्रकाश मे श्रग्रेंजी का घोटा लगा रहा था। उसी समय निकटस्थ कारखाने ने भोंपू द्वारा बारह बजाये । तत्काल ही प्रकारा बन्द कर मैं रुया पर जा लेटा अ्रौर शीध्र ही गहन निद्रा में निमग्न हो गया।

स्वप्न में देखा कि नारद जी भगव।न् विष्णु के दर्शनार्थ क्षीर－सागर में पहुंचे। भगवान् ने ग्रादर पूवंक श्रासन दिया तथा मृत्यु－लोक के समाचार जानने की इच्छा प्रकट की। नारद जी ने बतलाया कि वह्टाँ पर बड़े भयंकर तथा महाबली एक ग्रदृरय राक्षस ने जन्म लिया है जिसके भय से प्रारी़－ मात्र बहुत भयभीत हो रहे हैं। श्रत；हे दयालु， ग्राप शीघ्र ही ऐसे प्रारियों को निंय करने का कोई सरल साधन ब末एइये।
＂उसका नाम क्या है？＂भगवान् ने प्रश्न किया।＇अभगवन् ！नाम तो बड़ा भयानक है । नारद् जी ने कहा＂लेकिन 尹्रापकी कुपा से उस महा－ बली राक्षस का नाम लेने का दु：साह्टस करता हूँ। उस विकराल देन का नाम हैं＇एवजामिनेशन＇। श्रापके समान उसके भी श्रनेक नाम हैं，जसे परीक्षा， इम्तहान जाँच श्रौर टैस्ट्र इत्यादि ।＂

उसी समय धर्मराज ने एक बीस वर्षीय युवक उपस्थित किया，जो श्रभी त्रभी मृत्यु का सार्टीफिकेट लेकर श्राया ।

भगवान् विष्यु ने उसके दु：ग्ख जानने की इच्छा प्रगट की झौर कहा＂कहो क्या बत है？＂

युवक ने विनयपूकक कहा－महाराज 1 सुनने से पूर्व श्रापसे विनती करता हूं कि इस पुरानी हिन्दी को त्याग कर खड़ी बोली का प्रयोग कोजिये， श्रन्यथा ग्राप इसी भाषा का प्रयोग करते रहे तो श्रवसर श्राने पर，कोई भी हित्दी का प्रोफेसर लाल पैन्सिल के गोल－गोल लड्डुग्रों ग्र्रतिरिकत एक भी ग्रंक न देग। ग्रोर फेल कर देगा।＂नारद जी बोले－ ＂अरे मूर्ख तू निरा भोला है，ये ही तो विष्यु भगवान् तीनों लोकों के स्वामी हैं ।＇

युवक ने उत्तर दिया —＂इससे तो में भली－ भाँचि परिचित हूँ परन्तु ग्रापको ज्ञात नहीं कि मृत्यु लोक का श्रन्नदाता＇इक्तह्नान देवता＇पाँच लोकों का स्वामी है，जैसे ：－
（？）मिडिल लोक（२）मैट्रिक लोक（३）इन्टर लोक（ $\gamma$ ）बी० ए० लोक 习्रौर（Y）एम० ए० लोक। तथा छोटे मोटे लोकों की तो गएाना ही नहीं।
＂इस पराक्रमी देव न स्थान－स्थगन पर ग्रपने श्रड्डे स्थापित कर दिये हैं श्रौर इन ग्रड्डों की संख्या दिन－प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सबसे बडे गड्डे जो ‘र्यूर्वससटी कहलाते हैं，इसमें $? 8$ वर्ष की श्रायु से श्रधिक दंड पाने वाले श्रपराधी दण्ड पाते हैं। उनसे छोटे ‘कालिज’ होते हैं। इनमें २६ वर्ष से श्रधिक श्रायु वाले ग्रपराधी दप्ड पाते हैं तथा उनसे छोटे इन्टर कालेज，हाई स्कूल था मिडिल रकूल शदि हैं।＂

नारद ने प्रश्न किया -"उनकी देख-रेख किसके द्वारा होती है ?

युवक ने उत्तर दिया-छ्योटे श्रड्डों की तो हैड़मास्टर श्रौर बडे ग्रड्डों की प्रिसिपल ग्रौर लैकचरार करते हैं।"

नारद जी ने पूछा—"इनका क्या क्र्थ है ?"
युवक ने कहा-" "मास्टर का ग्र्थर्थ है कि वह जो विद्यार्थी को मार-मार कर ठीक कर दे । लैक्चरार का ग्रर्थ है कि जो इतना लम्बा चौड़ा लैक्चर दे कि विद्यार्थी का दिमाग थक कर चूँ चूँ करने लगे, ग्रौर प्राफैस र माने, ज़ो क्लास में प्रोफेसी करे।' ग्रन्त में युवक ने ग्रपनी बीती कहानी ग्रारम्भ की ।
"भगवन् ! में बी० ए० लोक के झ्रन्तर्गत अ्रन्य साथियों सहित चौदह वर्ष का दण्ड भोग रहा था कि यकायक ?३ नवम्बर के दिन हमारे लैकचरार साह्रब ने बहुत से पीले रंग के कागज लिये कक्षा में प्रवेश किया। मैंने सोचा श्रवशय ही दाल में कुछ काला है। मालूम हुग्रा कि वे इनिन्नहान देव के वारन्ट (एग्जामि नेशन फामं) हैं। मरता क्या न करता, मैंने भी सब के सएथ ६० हूपये भेंट किये ग्रोर कहीं पेशी के लिए मार्च की ₹? तारीख नियत की गई। यह देखकर मैंने भी श्रवने ग्रस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर 'इम्तिहान देव' का सामना करने का दृढ़ निरचय कर लिया । प्रोफेसर तथा लेक्चरार्स भी हमको बलि के बकरे की भॉँति 'इम्वोरटेन्ट हिन्टस' रूपी पुष्ट भोज़न देने लगे। पूर्वाकाशा मे जो बततें मुभे याद न हुई श्रौर न समभ में ही ग्राई, उन्हें मैंने घोट कर पी लिया सोचा कि समय पर कुछ न कुछ ग्रसर होगा ही ।"
"ग्रन्त में वह नियत तिथि भी ग्रा गई। प्रथम रात्रि तो इस प्रकार कटी जैसे किनी मृत्यु पाने वाले की रात कटती है। त्रात: ही देव मन्दिर में जाकर पूजा ही नहीं, वरन् साष्टाँग दण्डबत होकर प्राथंना भी की । तत्परचात् इमतहान देव की ॠदालत में

पहुंचा। इसी बीच पहली टन-टन की धवनि कान के पर्दे पर पड़ी तो तुरं्त ही श्रपने हृदय को जोर से दवा लिया कि कहीं वह् भी टन-टन न बोल जाये ग्रोर श्रपने श्रन्य साथियों सहित बलिदान भवन में प्रनेश किया। फाँसी का तस्ता (रोल नन्बर) र२० हूँठ कर बैठ गया। इतने में ही टन-टन की टूसरी ग्रावाज़ भ्राई ग्रोर भाग्य निर्णांयक "इम्तहान देव"' के प्रतिनिधि (प्रशन-पत्र) हमारे पास भेजे गये। मैंने देखा कि सबकी मुखाकृति गिरगिट के समान रंग पलट रही है। परन्तु थोड़े ही समय में हर ग्रोर कलम-दवातों का युद्ध छिड़ गया, सबने ग्रपनी श्रपनी योग्यतानुसार कावी रँगना श्रारम्भ किया। परन्तु श्रपने राम तो ऐसी बुरी प्रकृतियों से स $I$ दूर रहने के कार एा इस् दृईय का ग्रवलोकन करने में ही मग्न रहे। ग्रन्त में कुछ भूत सविष्य की सोचकर सब "इम्पोरदेन्ट हिन्टस्" ज्यों के त्यों कापी पर उतार कर, नीचे नोट दे दिया कि कृपया अ्रपने प्रइनों का उत्तर स्वंय इनसे द्वाँढ लेवें, ग्रगर किसी़ प्रशन का उत्तर न मिले तो किसी शच्छे 'नोट्स' मूं देख लीजिये।"

तदुपरान्त हम इम्तहान देव के फैसले की इस प्रकार बाट जोहने लगे जिस प्रकार मास के स्रन्त में बाबू लोग वेतन की बाट जोहते हैं तथा मुसलमान लोग ईद के चाँद की तथा हिन्दू लोग जन्माष्टमी के चन्द्रमा की। परीक्षा-फल के न ग्राने तक हमारी दशा श्राकाश के मध्य लटके हुए त्रिशंकु के समान रही। धीरे-धीरे वह दिन भी श्राया, जब कि परीक्षा-फल प्रकाशित हुग्रा। बैटरी मार कर देखने पर ज्ञात हुग्रा कि रोल नम्बर ४२० तो 'यथा न'म, तथा गुएा' ही रहा। ग्रब क्या था, काटो तो सून नहीं। घन्तत: मैं उस महाबली राक्षस का जिकार वन कर ही रहा जिसके वझीभूत हो चलती हुई रेल के नीचे श्रपनी गर्दन उसी समय धर्मराज के दूत मुर्भे यहाँ पकड़ लाये ।

इतने में ही मेरी श्राँख सुल गई तथा धयान ग्राया कि मैंने भी परसों ही ग्रपर्नी वारिक परीक्षा देनी है।
(12)

देवीदययल गुप्त, बी० ए० (घंतिम वर्ष)
मेरे मन में ग्रास लगीं है,
जग को राह दिसाने की।
ग्रन्तर में ज्वाला धघकी है, तूफानों से होड़ लगाने की ॥

मूक साधना के द्वार में ग्रटल घ्येय को पाऊँगा। चाँद श्राज विश्राम करो तुम में ं्रकाश कलाऊँगा।। अस्थिर अंघकार का साथी,
त्वसा-भंगुर उ्रभिमान हैं।
मत समभो माबस को जीत,
थोथी उसकी शान है 11
*

में अ्रपनी बीया। के स्वर में, गीत जीत के गाऊँगा। चाँद ध्राज विश्राम करो तुम मैं प्रकाश कैलाऊँगा ।।

विश्वासों के तारक रूप
मेरा साथ निभायेंगे।
फिलमिल श्राँख मिचौनी से
ये मेरा मन चहलायेंगे ।।
विश्वास करो चन्दा तुम, मैं सागर में ज्वार उठाऊँगा। चाँद श्राज विश्राम करो तुम, में ग्रकाश कैलाऊँगा।।

## "यह भी एक कला है"

मोहन सिंह् आ्याहलुवालिया, बी०ए०

कुद्घ लोगों को चिढ़ाने की ग्रादत होती है आ्यरर उन्हे चिढ़ाने वाले भो मिल जाते हैं, लेक्रिन मजा दोनों को ग्राना चाहिए। लोगों को तंग करना भी एक कला है । यदि श्राप इस कला में योग्यता प्राप्त करना चाहते है तो मुभसे मेरे पते पर मिलिये । लेकिन सावधान रहें कहीं मैं भ्राप ही को तंग करना शुरू न कर दूँ।

लोगों को तंग कैसे करें शायद ग्राप सोचेंगे कि तंग करना तो बड़ा श्रासान है। फिर भी यह सब लिसने का क्या ग्रभिप्राय ? यदि ग्राप सनचमुच दूसरों को तंग कग्ना चाहते हैं तो इसे तो पढ़िये ग्रौर इसमें निपुएता प्राप्त कीजिये।

हम लोगों को दो श्रेशियों में बाँटते हैं, परिचित ग्रौर अ्रपरिचित। परिचित लोगो को तंग करना बहुत सरल है, काररा यह है कि हम इन की समसत श्रादतों से परिचित होते हैं। बस किसी की रूचि के प्रतिकूल ज़रा सा काम कीजियें कि दे स्वयं ही चिढ जायेगे। श्रवरिचित लोगों को तंग करने को जो नियम विखोष है वह यहा पढ़कर पता लग जायेंगे।

पड़ोसियों को तंग करने में तो हमें विशेष ग्रानन्द्राप्त होना चाहिए ! यह है भी उनित क्यों कि पड़ोती होने के नाते पूरे मुहल्ले में चहल-पहल जुटाने का उत्तरदाधित्व ग्राप ग्रपने ऊपर लें ले तो क्या बुरा है। ऐसान हो कि मुहल्ला सूना सूना पड़ा रहे । ग्रासिर ग्राप के मुहल्ले में ग्रादमी बसते है कोई उल्लू तो नहीं ग्रोर साहिब; यदि उल्लू भी रहते हैं तों वह भी रात को महफिल गमं कर ही

लेते है। झ्राप के मुहल्ले में चलते फफरते, बोलते चालते, हैसते खेलते मनुष्य रहते है । श्रजीं बस्ती है कोर्द इमशान भूमि तो नहीं, तो श्रौर ग्राप पह भी जानते हैं कि रेडियो का मन भाबक काप्यक्रम रात्रि के नौ बजे के बाद ही ग्रारम्भ होता हैं। रेडियो बजे वह भी धीमें यह वया बात हुई ? यदि बजे तो फुल वाल्युम (Full Volume) पर नहीं तो ने बजे। ऐसे कैसे मालूम होगा कि साहिब के पास रेडियो है ग्राखिर वैसे खर्च कि, ये है कोई सड़क पर पड़ा हुग्रा तो उठाया ही नहीं है।

घ्रापके पड़ोस में यदि कुम्भकर्यां के बंघंज भी बसते होंगे । उनको गहरी निद्रा की श्रादत भला कंसे पड़ जायेगी यदि ग्राप शास₹्रीय संगीत का कार्यक्रम फुल वाल्युम (Full Volume) पर लगर देगें। श्राबिर स्वर्गीय नेहृरू जो ने भी कहा था कि विश्रोष तोर पर घ्रापत्ति काल में अ्राराम हराम है।" ग्रीी म्रपना विचार तो यहै है कि नींद हराम है। घबराने की कोई बात नहीं स्वयं कान में रूई डाल कर रखिये।

परन्मु एक गड़बड़ होगी। रेडियों स्टेशान तो रात के ग्यारह बजे बंद हो जाते है। तो फ़िर बया, एक ग्रामोफोन ले ग्राईये। ग्रौर लगा दीजिये‘मेरे महबूव तुभे मेरी मुहबबत की कसम' या '"यह मेरा प्रेम पत्र पढ़कर कि तुम नाराज न होना कि तुम मेरी जिन्दगी हो कि तुम मेरी बन्दगी हो". . . .

क्यो ठीक सूभीक न ?

यदि श्राप बंगले में रहते है तो ग्राप के पड़ौसी भी बंगले में ही रहते होंगे। कोठी में बगीचा होगा ही। बस ग्राप एक बकरी या गाय ले ग्राईये औौर उसे बाहर का धास मत चरने दीजिए ग्राखिर पड़ौसियो के बेलबूटों का ग्राचार डालना है ?

यह्ह कहने की तो ग्रावइयकता ही नहीं कि ग्राप ग्रपने छर का कूड़ा-करकट पड़ौसियों के घर के ग्रागे फैंकेगे। यदि ग्राप छात्रावास में रहते हैं तो भी पोछे रहने का कोई कारएा नहों। किसी को पढ़ता पाये तो कट से जा पध fिये श्रौर ग्रपने वक्त्चतुर्य का प्रमएशा दीजये । सच मानिये, ग्राप का पढ़ाई का पूरा पूरा मूड बन जायेग।। जब ग्रापको नींद ग्राये तो टैप्रल लैम्प में एक पैसा रख कर बल्बं जगए दीजिये। बस बटन दबते ही सारे होस्टल या कालेज की ल। ईट गुम ।

ग्रब जरां श्रपरिरित लोगों से सुलभ लें । परीक्षा के घ्रत्रसर तो ग्राप के 'बर में लाङडस्पीकर बजना ही चाहिंये, कार्या भट से दूँढ निकालिये। त्विवाह-रादी, जन्न दिन कुछ न कुछ तो निकल ही श्राता है। बड़ी उर्चतत सी बात है। श्राखिर वर्ष के तीन सी पैसठ दिन होते हैं एक दिन लाउडस्पीकर (Loud-Speaker) बजा लिया तो क्या हुग्रा ? बार्की दिन तो पढ़ाई के ही होते हैं। ग्राप उन्हें पढ़ाई से रोकने थोड़े ही जाते हैं। ग्रैर तो श्रौर मस्निएक को काम के ग्रनिरिक्त मनोरंजन की भी श्रावईय कता होती है। इसका प्रबन्ध करना भी तो ग्राप ही का कर्त्तठ्य है। फिर श्राप उन से 'भनोरंजन कर' तो नहीं लेने जाते ।

यह भाईचारा तो रहा मुहलल्ले वालों से । श्रब यह भी देखें कि सिनेमा-हाल में हम ग्रपनी उपस्थिति कंसे दर्शाऐं। एक नियम बना लीजिए कि हाल में तब प्रवेश करें, जब कि भीतर ध्रँघेरा हो

जाये । फिर गेट-कीपर (Gate-Keeper) ग्रापके साथ सेकेट्री की तरह चलेगा ग्रैर श्राप गर्वनर की तरह चलिये। भ्रपनी सीट पर पहुँचते-पदुँचते ग्राप एकाध दर्जन श्रादमियों से टकरा ही जायेंगे। यदि किसी पुरुष की टागों से भिड़ भी जायें तो डाँट दीजिए "क्या टागें कैला ₹खी हैं, यह कुर्सी है, कोई पलंग तो नहीं है।" जब कुर्सी पर बैंटें तो कहना श्रंरम्भ कर दे, "श्रजी, क्या सिनेमा हाल बनाया है। गर्नी के मारे दम धुटा जा रहा है ।" क्रोर यदि यही बात ग्रापके पास बैठने वाला कह दे तो भट से पैंतरा बदल लीजिए, 'हाँ सर्हिब गर्मी लग रही है ग्रापको, बात तो ऐसे करते हैं जैसे हाल में घुसने से पहले रेफरीजियेटर में ही बन्द पड़े थे या श्रभी-ग्रभी विलायत से तारीफ ला रहे हैं।'

यह् तो रही एक बगल वाले की। ग्रब दूसरी बगल वाले की श्रोर घ्यान दें। ज़त्र तर्क पिषचर को कहानी काफी ग्रागे बढ़ गई होगी, लिंक (Link) जiंड़ने के लिए उन महाशय जी से पूछिये कि कौन से द्वरय चले गए हैं। यदि वह ग्रानाकानी करे तो लपका दीf, ए, "श्रजी हम दो पिवचर की कहानी ही पूछ रहे हैं कोई परीक्षा भवन के प्रशन का उत्तर तो नहीं पूछा ।"

यदि ईरवर की कृषा से ग्राप का कद काफी लम्बा है तो कहृना ही क्या ? श्रपने ऊँचे सिर को ग्रौर ऊँचा कीजिएए, चाहे ग्राप की गर्दन ही क्यों न दु.खने लगे। ग्रपने शरीर को एक स्थान पर स्थिर मत रखिए, कभी दांई ग्रोर तो कभी बांई श्रोर, जिससे कि श्रप्पके पीछे बैठने वाले व्यक्ति का व्यायाम होतI रहे और वह सतक्ष रहे।

यह तो ग्राप जानते हैं कि कोई भी पूर्गत्ता को प्राप्त नहीं होता। इसका प्रमाए ग्रापको मिल जाएगा। जब कोई नया गीत झ्राये, ग्रनिवाय हूप

से श्राप श्रनुभव करेंगे कि तबला पूरे जोर से नहीं बज रहा है। भट से इस काम को पूरा कर दीजिए चीज़ की कमी तबले पर हाय बजने से रह गया है, वह ग्रापने पावों से कुर्सी बजा कर पूरी कर दी। संगीत प्रेमी होने के नाते ग्रापको गायक या गायिका का साथ एक गेस्ट-र्रादिस्ट बन कर वेना चाहिए। यदि ग्रापके साथ बच्चा हो तो उसे घर से कुछ खिला कर मत लाइये तांकि उसके रोने चिल्लने

की मधुर ध्वनि संगीत में कुछ निखार ला दे।
ग्राप विइवझस कीजिए यदि ग्राप चाहें तो सँकड़ों ऐसे साधन हूँढ सकते हैं जिससे ग्राप लोगों को श्रपनी कला का चमहक्कर दिखा सकें। श्रोर कुछ हो या न हो, यह तो अ्रनइय होगा कि लोग आ्राप को जान जायेंगे। ग्रोर ग्रापकी जरूरत से श्रधिक तारीफ करेंगे।

## दो राजनीतज्ञों की श्रमर वाखी

9. बिना कायं के सिदान्त दिमागी ऐय्याशी है, बिना सिद्धान्त के कायं श्रन्घे की टटोल है।
२. उचित कायं विचार के श्रभाव में उत्पन्न नहीं हो सकता, उसके पहले विच'र की श्रावश्यकता है।
३. 'भ्यापत्तियों हमें घ्याड्मज्ञान कराती है, वे हमें दिसा देती है कि हम किस मिद्टी के बने हैं।'
૪. 'भ्राराम उनके प्रति विश्वासघात है जो इस संसार से चले गये है घौर जाते समय स्वतन्ग्ता का दोप सदा प्रज्जवलित रखने के लिये हमें दे गये है ; ये उस हयेय के प्रति विश्वासघात है जिसे हमने ग्रपनाया है। वे इन लाबों लोगों के प्रति विश्वासधात है जो कभी श्राराम नहीं करते ।
10. 'घन, जीवन, संत्री श्रौर भोजन के विषय में सब प्राराी म्रतृष्त होकर गये, जाते हैं म्रैर जायेंगे।
२. ंग्राग से जलते हुए एक ही सूखे वक्ष से समस्त वन इस प्रकार जल जाता है जैसे एक ही कुपुक्र से कुल।
३. 'कुरूप मनुष्यों का सेन्द्यं विद्या है तपस्वियों का क्षमा ; कोकिला का रूप स्वर होता है म्रोर पत्नो का रूप पतित्रत-धर्म है ।'
૪. जैसे काटा हुप्रा चन्दन का वृक्ष गन्ष को नहीं छोड़ देता बूढ़ा हो जाने पर भी गजराज श्रपनी मन्द गति को नहीं छोड़ता, कोरूह में पेरी हुई ईख मधुरता नहीं छोड़ देती उसी प्रकार दरिद्र व्यक्ति सुसीलता श्रादि गुयों को नही छोड़ता।'

## अलो श्निन्तिम एन्ना मी फलट्ट गयक

तेज कृष्या भाधिय। बी०ए० (हिन्दी) ग्रानर्सं ग्रंतिम वर्ष
मधुन्म्दुत के अ्रांगन में पतभड़ की धूनी भभक उठी। मानसरोवर की लहरों में भंभक की सन्ध्या विकट उठी ॥

हो गया विषयानिल मलयानिल,
द्विज कर पान चेतना शून्य हुग्रा।
महामेदिनी के गहन गर्म में, कोई प्रलयंकारी विस्फोट हुग्रा।

हो उठी प्रकंपित श्रखिल धरा,
एक मंयक और व्योमांक हुश्रा।
हो डठा तरल सब ठोस शून्य,
वसुधा का सुधा दहनांक हुत्रा।
ग्राहों की नगरी रवमान हुरुई,
क्रन्द्न वन अ्रति धनवान तुश्रा।
दुखिया कातर नवकलियों पर,
निरीह ग्रलियों का गु जान हुच्चा।
ग्राया भाटा नम मंगा में,
इन्द्रपुरी प्लाबित हो बैठी।
नच्तत्र एक के चुभते ही,
सृष्टि स्व धीरज खो बैठी।
मधुन्मृतु के ग्राँगन में पतभड़ की धूनी भमक उठी। मानसरोवर की लहरों में भंभा की सन्ध्या विकट उठी।।

प्राची के मुख की लाली में, पीलेपन का ग्राभास हुझ्या। भरी दुपहरिया के नीड़ो में , उलूक-इघनि का वास हुञ्रा।

> वहाँ देवनन्दी के पीहर में, शत् शत् उल्कापात हुग्रा। पितदेव चिन्तित हो बैठे, श्रार्यवर ! ग्राज यमसात्त्रुग्रा।

रोमांचित तुध्या ले दीन पवन, देखो पलभर में किधर गया।
क्या नदी नाले, क्या नील भील,
प्रस्तर तक स्यूख बिखर गया।
श्रम्बर ने दी़ निरास भरी,
राका सपने में चीख उठी। गु'जायमान श्रम-शंस-ध्वनि ,
ख्वतः ही सहसा बिलख उठी।
मधुञ्ष्टु के ग्रांगन में पतभड़ की धूनी भमक उठी।
मानसरोवर की लहरों में भंभा की सन्ध्या विकट उठी ॥
वीएा के तारों में ढ़ीलापन ग्राया,
छ्कल लिया समय ने गीतों को। हो गया चिरसुप्त हा। बही दीप,
जो रहा सदा जगाता दीयों को।

मानवता सुनककर सिहर उठी, शान्ति-कपोत ब्ठट-पटा गिरा। लो 'गुलाब' भी बिखर गया, नन्द्न-चन में रैख उभरा।

विटयों की छ्छाया कर उठी रुदन, लख प्रसमय ही श्रृतु का परिवर्तन।<br>'लो श्रन्तिम पन्ना भी पलट गया ,'<br>कह उठा इतिहास ये कुन्दू मन।

> तो द्वीरोदधि की नीरवता में, विध्यु की वाम हग फड़क उठी। शाशतन शारदा के मन्दिर में, शनि की शंपा कड़क उठी।

# मधुन्म्रतु के श्रांगन में पतमड़ कीं धूनी भभक उठी। मानसरोवर की लहरों में भंभा की सन्ध्या बिकट उठी ।। 

"कायरता पूछती है-क्या यह भयरहित है ? श्रीचित्य पूछता है-ष्या यह व्यवहारिक है ? अहंकार पूछता है -क्या यह लोकत्रिय है ? परम्तु श्रन्त:करए पूछता है—क्या यह न्यायोचित है ?"

## हिन्द्री साहित्यं में हूं गार रस

भीमसैन भित्तल हिन्दी (श्रानसं) तॄतीय वर्ष

काष्य शास्त्र के नव रसों में वीर, शांत तथा श्रृंगा रस मुस्य माने जाते हैं। प्रथम हमें देखना है कि 'शृंगार' का व्युत्प्पत्तिक श्रर्थ क्या है। सब्दार्थ की दृष्टि से 'शृंगगार' कामोट्रेक ग्रथवा काम बृद्वि की प्राप्ति का द्योतक हैं। 'शृंगार' में दो शबद मिले है श्रृंग तथा ग्रार। 'खृंग' का ग्रर्थ है कामोट्र क्र श्रथवा काम की वृद्वि; 'ग्रार' गत्यर्थ 'ग्रट' धातु से उना है, जिसका ग्रर्थ है 'प्रापित'। स्रतएव श्रृंगार का अ्रर्थ हुग्रा 'काम वृद्वि की प्राप्ति'। ग्रतएव जो रचना मानव हृदय की मधुरतम भूख काम को उज्जीवित एंव परितृप्त करेगी, वह श्र्टंगार रस की रचना कही जायेगी । विइन साहित्य का एक श्रत्यन्त विस्तृत परिमाया इस हैर्य्य रस की मन्दाकिनी से ग्रोत-प्रोत है। इस रस के दो रूप हैं : संयोग शृंगार जिसमें नायक-नायिका का परस्पर दर्शन, भू-भ्रग, कटक्ष, ग्रश्रुविमोचन, विवर्रा, एंव स्वरभंगता; तथा वियोग या विप्रलम्भ शृंगार में श्रश्रुविमोचन तथा वैवर्ण्य श्रादि। संयोग की श्रपेक्षा वियोग श्रृंगार कावयों की द्दष्टि में भावों को ग्रधिक उत्तेजित करने वाला होता है, इसलिये कवियों ने जितना वियोग श्रृंगार का वर्शंन किया है उतना संयोग श्रृंगार का नहीं।

जब से कवि ग्रोर लेखक नाम के प्राशी का प्रादुर्भाव हुग्रा तरी से शृंगार रस की रचना होने लगी। हिन्दी साहित्य की ग्रपेक्षा श्रृंगार वर्गान संस्कृत साहित्य में, कहीं ग्रधिक उपलव्ध है। महाकवि काली दास का 'मेघदूत’ श्रौर 'कुमार सन्भव' विप्रलक्भ श्नृ गार से ग्रोत-र्रोत है। हिन्दी साहित्य में प्रारक्भ से ही श्रृंगार की सरस धारा प्रवाहित रही है। यों तो रासो ग्रन्थों में श्रृंगारी चित्र्ता

उपलब्ध होते हैं, पर श्रृंगार का उन्मुक्त प्रवाह विद्यापति की पदावर्ली में ही सबसे पहले प्रवाहित हुश्रा है। सौन्दर्य एंव प्रम के विलगसपूर्रा चित्रों से पदावली ग्रोत-प्रोत है। नख-शिख एंव वय:सन्धिइत्यादि के वर्गान में परम्परा युक्त उपमानों का प्रचुर प्रयोग होने पर भी कवि का स्वतन्त्र निरीक्षरा तथा उसकी रसलिप्सु चेतना के श्रसन्दिगध दर्शान होते हैं। विद्यापति की पदावली से एक उदाहरागा देखिए जिसमें प्रियतम के सौन्दर्य का वर्शान है :

कि कहन हे सखि ग्राजुक बात, मानिक पड़ल कुबनिक हात।
काव कांचन ज जः्म मूल, गुञ्जा रत्तन करइ समतूल ।
जे किधु कभु नहीं कला रस जान, नीर रदीर दुर्शं करे समान ।
तन्हि सो कहां पिरितरसाल, वानर कण्ठे की मोतिय माल ।
भनइ विधापति इह रस जान, बानर मुंह की शोभिय पान ।

पदावली के संयोग चित्रों में विलासिता की स्पष्ट गंध श्रती है तथा प्रेम विव्हलता, लालसा, श्रतृप्ति, सम्मिलन-सुख की तल्लीनता एंव ग्राइंम-विस्मृति इत्ययदि की जसी मर्मस्पर्शी प्रवृति पदावली में मिलती है वह ग्रवलोकनीय है। विप्रलғ्भ वर्णान में विद्यापति ने स्थूल ऐद्रियता का परित्याग कर नायिकाग्रों के प्राएों की भीतरी सिहरन को उन्मीलित किया है। 'गीतगोविन्द’ का सा गहन माधुर्य यदि हिन्दी साहिः्य में कहीं उपलंध है तो वह विद्यापति में ही हैं ।

कबीर, दादू इत्यदि संतो की रचनाग्रों में श्रृंगार पार्थिनता से विमुख होकर ग्राघ्यातिमकता की श्रोर उन्मुख हो गया है। जायसी का श्रृंगार निराले ढंग का है क्योंकि पद्मावत' में एक लौकिक प्रेम कथा को श्राध्यान्तिमक प्रेम के विकास एवं परियाति पर घटाने का उद्योग किया है। लोकिक घरातल पर बहता हुग्मा भी 'पद्मावत' का प्रेमप्रवाह म्रलोकिक संकेतों से परिपूरां है । ग्रर्थत रतनसैन झ्रौर पदमावती के संयोग बरांन में जो मादक विलासिता समात्रिप्ट हो गई है, उसमें भी जायसी की स्पष्ट सोद्दे रयता, यथेष्ट रसचवर्गा में में बाधा पहूँचाती। 'पद्मावत' के श्र'गार वर्गांन में नागमति ग्रवइय विश्चुद्ध लौकिक रस का परिपोषरा करता है तथापि जायसी मूलतः साधक है, श्रृंगारिक कवि नहीं।

जायसी के 'पदमावत' से संयोग श्रूंगार का चित्र्ाा देखिये। इसमें पदमावती के शृंगार कां कैसा झ्रनूठा वर्शान जायसी ने किया है ।

धीर धीर सब कंचुकी सारी। सर वर मंह पैठी सब नारी। पाई नीर जानों सब बेली। हुलसहि करहि काम के केलि । करिल केस बिसहर बिस-भरे । लहरें लेहि कबल मुख घरे। नवल वसंत संवारी करी होई प्रकट जान हू स-भरी।
उठी कोप जस दारिखे दाखा। भई उनंत प्रेम
के साखा।
सरिवर नहि समाइ संसारा : चांद लहाई पैठ
लेइ तारा।
धनि सो नीर सभि तरई ऊई । ध्रब कत दोठ कमस ग्रौ कूई ।

सूर इत्यादि भक्त कवियों ने श्रपने उपास्य कृष्डा की प्रेम लीलात्रों का गान किया है। जहाँ विद्यापति एवं जायसी नायिकाम्रों के नख-शिख वर्रान में ही सम्पूर्रां कोशल प्रदर्दरत कर देते है, वहीं सूर कृष्एा के सौन्द्र्य को बार-२ चित्रित करने में ग्रपने को कृतकृत्य मानते हैं। वस्तुत : गोपियों की सम्पूर्गां ग्रासक्ति कृष्या के रुप पर ही केन्द्रित है तथा कवि श्रवूर्व तन्मयता पूर्वक उस रूप सुषमा का गान करता है। संयोग सुख का जैसा मादक एवं विलासमय चित्राए सूर ने किया है उतना ही मर्मस्पर्शीवर्गन वियोग का किया है। सूर के वियोग शृंगार का एक उदाहर $ए$ द्रष्टव्य है ।

कहत कत परदेसी की बात ।
मन्दिर श्ररध श्रवधि हृरि वfि हम सों हरि ग्रहार चलि जात ।
सीसरिपु बरष, सूर रिपु जुग सम, हररिपु किये फिरे घात । मघ पंचम लैं गए स्यामघन ताते जिय श्रकुलात 1
नखत, वेद, ग्रह जोरि श्ररध करि को लरजं
हम खात।
'सूरद!स' प्रभू तुमहि मिलन को कर मीड़त पछ्तात।

इस पद में सूर ने विरह की श्राग में जलती हुई गोपियों का कितना मर्मिमक चित्र खीं चा है 1 प्रिय की दी हुई ग्रवधि बीत जाने पर, प्रियतम को ना श्राते हुए देखकर जीवन से विष खाकर मरना ग्रधिक पसंद करती हैं। सूर ने प्रेम बिद्द ह्दय को जितनी श्रगएित वृतियो का श्रंकन किया है, स्वाभाविकता के साथ सुरम्यता का जैसा मंजुल मिश्ररा किया है, वह हिन्दी साहित्य में श्रन्यत्र उपलब्ध नहीं । तुलसी दास ने भी मर्यदादा के श्रन्दर रहते हुए सीता का ष्टृंगार श्रौर राम-वन-गमन के

समय ग्राम वधुप्रों के श्रृंगार का श्रनोखा वर्गन कर ष्टृंगार साहित्य को चार चांद लगा दिये हैं। तुलसीदास का एक उदाहरशा देखिये।

दूलह श्री रधुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सनै मिलि सुन्दरि, वेद जुग्रा जुरि
विप्र पढ़ाहीं ।
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं। याते सबै सुधि भूल गई, कर टेकि रही पल टारति ना हीं।

जितना मर्यादित वर्गान तुलसीं के श्टृंगर में मिलता है उतना कहीं किसी ग्रौर कवि के ष्टृंगार में नही । भावुक कवि की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि मनुष्य के हुदय में घुसकर उसकी भावनाग्रों का सूक्ष्म निरीक्षरा कर ले ग्रौर फिर उसका कलापूर्गा निरूपए करे। यह विशोषता तुलसी में है। सूर ग्रौर तुलसी के पशचात मीरा का सम्पूर्यां काष्य वियोग श्रृगांर से ग्रोंत-प्रोत दृषिडगत हाता है। वे श्रपने इष्टदेव श्री कृष्टा को श्रपना पति मानती श्रौर उनसे मिलने के लिये तड़पती थीं। इसी काराा उनके गीतों में मिलन की उत्कण्ठा ग्रौर विरह की वेदना है। इनके समस्त पद सच्चे हृदय की वेदना के गीत हैं। वे श्रपने प्रियतम को पाने के लिये जोगिन बनने को प्रस्तुत हैं, उनके निकट जाने के लिये पंखों की कामना करतीं है। मीरां ने बड़ी मारिकता से ग्रपनी विरहावस्था का वर्गान किया है।
डगर बुहारूँ, पंथ निहारूँ,
जोइ.जंंइ श्रस्वियाँ राती।
राति-दिवस मोहिकल न परत है, हियो फटत मेरी छाती ।

विरहियी मीरा प्रेम की पींर से व्याकुल है-उनमें लौकिक ग्रौर अ्रलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम की ग्रनुर्भूतिग्रों का समन्वय है ।दर्द की दिवानी मीरा का स्वर ग्रौर उसकी प्रेम भावना निक्न पंक्तियों से स्पष्ट है। :-

हेरी मैं तो प्रेम दिवाखी, मेरा दरद ना जाने कोय।
घायल की गति घायल, जाने की जिन लाई होय ।

रीचिकालीन कवियों के शृंगार वर्शान पर युग की विलासिता तथा संस्कृत के काव्यइात्र का प्रभाव फड़ा है, तथा जो श्रृंगार भक्तियुग में भावना के मधुर सौरभ से ग्रोत-प्रोत था, वह कामुक विलासिता का गान करने लगा । यद्यपि राधाकृष्णा श्रब भी ग्रालम्वन रुप में गृहीत रहे, पर परकीयाग्रों तथा खण्डिताय्भों की बढ़ सी ग्रा गई ग्रौर स्वाभाविकता का स्थान कृत्रिमता ने ले लिया, तथाषि, सौन्दर्य एवं प्रेम के मार्fमक चित्र भी इन क.वियों ने श्रंकित किये हैं। नायिका-भेद कथन के व्याज से केशाव, मतिराम, देव तथा श्रत्य परवर्ती श्राचर्य कवियों ने झ्रत्यन्त सरस पद्यों की रचना की। राम चन्द्रिका से निम्न उदाहर एा जिस में शक ने सींता के मुख की चांद ग्रौर कमल से उपमा करके मुख के सौंदर्य के ग्रागे दोनों उपमानों को फीका प्रस्तुत किया है कितना सुन्दर है।

एक कहैं ग्रमल कमल मुख सीता जू को एक कहैं चन्द्र सम 尹्रानन्द कों कदरी। होइ जो कमल तौ रयनि में न सकुचँ, रो चंद

जौ तौ बासर न होई द्युति मंद री । बासर ही कमल रजनी ही में चंद मुख बासर
हू रजनि बिंराज जग बंद री।

देखे मुख भंत्रै श्रनदेखेइ कमल चंद, ताते मुख मुखै, सखि, कमलौ न चन्द री।

बिहारी की सतसई समस्त शुंगार-साहित्य का भूषपा है। हावों एंव श्रनुभावों की जैसी रमयीय योजना उसमें हुई हैं उससे बिहारी की रसिकता का मिलता परिचय है। बिह्हारी का एक उदाहरा देखिये :-

घ्रंग श्रंग नग जगमत दीपसिखा सी देह
दिये बढ़ाए हैं रहै बड़ौ"ऊजरौ गेह।
घनानन्द, बोधा इत्यादि रोतिमुक्त कवियों ने प्रेम की पीर की बड़ी ग्रनुभूति पूर्या ध्यंजना की है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि रीति युगीन श्रृंगार श्रमानिक्कता से विद्रोह कर धरती पर अ्या गयद है ग्रीर पाधिव प्रेम की सम्पूर्ं स्यामलता एवं उज्जवलता, विलासिता एवं नर्सागकता, कुरुपता एवं कमनीयता उसमें एक साथ प्रतिफलिता हुई है ।

छायवादी युग में शृंगार पुनः स्थूल से उठकर सूक्ष्म धरातल पर ग्रा गया है श्रोर सौन्दर्य एवं प्रेम की वययी, एवं कोमल भावनाग्रों की कभिद्यक्ति हुई है। परवर्ती सांहित्य फायड के कामवाद से स्पष्ट प्रभावित है। परन्तु वर्तमान युग के सीहित्य में मानव मन की सूक्ष्म तथा सधन ग्रभिष्यक्ति प्रभावशील रूप में की जा रही है ग्रतः श्रुंगार भावना भी ग्रघिक विषय तथा विविध रूप में व्यंजित हो रही है। ग्राज के छायावादी युग में जयरंकर प्रसाद, मुमित्रा नन्दन पंत, मैंधिलीशरा गुव्त, ग्रयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिश्रोध" ने श्रपने सौन्दर्य के सागर में उठती लहरों के भावों को जिन २ प्रतीकों द्वारा ग्रभिष्यक्त किया है उनके कारसावे ग्राज के युग के प्रसिद्ध सौन्द्रयं रस में तल्लीन कवियों में से गिने जाते हैं।

प्रसाद जी ने 'लहर' में नायिका के शारीरिक सीच्दर्य व मानसिक रील-सौन्दर्य के कुछ्छ विशिष्ट संकेत दिये हैं ।
१. शाशि की सुन्दर रूप विभा-
२. जिसके म्रहाए कपोलों की सुन्दर छाया मेंश्रनुरागिनी उषालेती थी निज सुहाग मधुमाया में।

लह्र में ‘बीती विभावरी जाग री’ गींत कवि के उ का बड़ा ही ब्यंजनात्मक श्रौर संकेतिक भंषा में कवि ने चिश्र सींच डाला है r विरह विदग्ध, परित्यकता एवं विमुक्ता नायिका का यह चत्र बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है । 'हर्शिप्रोध' जीने प्रिय्रवास में प्रकृति सौन्दर्य का कितना सुन्दर चिश्र प्रस्तुत किया है।

दिवस का श्मवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला, तह शिखा पर थी घ्रव राजती, कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।
मेंिलीशार खा गुष्त ने श्रपने 'पंचबही' नामक काव्य में प्राकृतिक सौन्द्यर्य के ग्रनुनुम दर्शंन कराये हैं।

है बिखेर देती वसुन्धरा मोती, सबके सोने पर, रवि बटोर लेता है उनको सदा सबेरा होने पर । कटिके नीचे 'चिकुर जाल में उलभ रहा था बांया हाथ-बेल रहा हो ज्यों लहरों में लालकमल भौरों के साथ।
इस भाँति मंधिली शररागुप्त जो न 'पंचवटी’ में संयोग शृंगार तथा 'यसोधरा' एवं 'उनिला' में वियोग सृंगार का झ्रनूठा वर्शान किया है।

प्रसिद्ध कवियिश्री महादेवी बर्मा ने वियोग श्रृंगार का जितना मामिक चित्र्या किया है उतना习习न्यत्र दुर्लंभ है। उनकी प्रत्येक वंक्ति में हृद्य-रूपी दौपक मधुर-२ जलता रहता है :-

मधुर मधुर मेरे दीपक जल
प्रिघतम का पथ म्रालोकित कर ।
भ्रन्त में हिन्दी साहित्य के सभी युगों के इतिहास के पृष्ठों का श्रवलोकन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हिन्दी साहिट्य शृंगार रस से परिपूरां रहा है एवं ₹हेगा।

ज्ञान
संकलन कर्ता :-निर्मंल कान्ता बी०ए०
(ग्रानसं) श्रंतिम वर्ष

हर क्षशा रिक्षएा देता है, ग्रौर हर पदार्थ, क्योंकि ज्ञान हर रूप में भरा हुग्रा है ।
—एमरंन
ज्ञान का पहला काम ग्रसं्य को मालूम करना है, दूसरा संत्य को जानना।
—लेक्टेन्टियस
जहाँ पूरां ज्ञान श्रोर तदनुसारिगी किया है, वहाँ नीति, विजय, लक्ष्मी आर अ्रखंड वैभव है ।
—गीता
जिस ज्ञान से मनुष्य श्रलग श्रलग सब जीवों में एक ही श्र्रनिनाझी श्रत्मा को देखता है वह सात्विक ज्ञान कहलाता है।
—गीता
एक ईरानी दार्शां निक से पूछा गया : 'ग्रापने इतना ज्ञान केसे प्रा्त किया ?' जवाब fमला : 'जिसका मुभे ज्ञान न होता उसके विषय में प्रशन पूछने में संकोच न करने से।'
—श्रज्ञात
बादल चाहे पदवियाँ श्रौर जागीरें बरसा दें, दौलत चाहे हमें दूँढ़े, लेकिन ज्ञान को तो हमें खोजना पड़ेगा।
—यंग
काम कोध को श्रापस में लड़ाकर मारना इसमें ज्ञान का कोराल है ।
—विनोबा
ज्ञान तींन प्रकार से मिल सकतt है। मनन से, जो कि सर्कोत्कृष्ट है ; श्रनुसरणा से, जो कि सबसे सरल है ; ग्रनुभन से, जो कि सबसे कड़ना है।
—कन्प्यूरूियस

## विबेकानन्द वाशी

संकलन कर्ता :—चानन लाल बी० ए०

मेरे नौजवान दोस्तो! बलवान बनो! तुम्हारे लिये मेरी यही सलाह है। तुम भगवद् गीता के स्वाध्याय की ग्रपेक्षा, फुटबाल खेल कर कही ग्रधिक सुगमता से मुक्ति प्राप्त कर सकते हो। जब तुम्हारी रगें घ्रौर पुट्ठे प्रधिक दृढ़ होगे तो तुम भगवद् गीता के उपदेशों पर ग्रधिक श्रच्छी तरह चल सकते हो गीता का उपदेश कायरों को नहीं दिया गया था किन्तु ग्रजुँन को दिया गया था, जो बड़ा हूरवीर, पराक्रमी ग्रौर क्षत्रिय-शिरोमशिा था। कृष्ता भगवान् के उपदेश और ग्रालौकिक शक्ति को तुम भी समक सकोगे जब तुम्हारी रगों में खून ग्रोर तेजी से दौड़ेगा।
'संभव 尹्यसंभव से पूछता है कि "तुम्हारा निवास कहाँ है ?" उत्तर मिला "निर्बल के स्वम में" -रवीन्द्र

त्रिभुवन कोल. बी०ए० (घ्रंंतिम वर्ष)
? नया मिनिस्टर, भाषया देने श्राया, साथ 尹्रपने, अपना घरबार लाया। दर्शंक फटीचर, प्रबन्धक बेहाल।
मोची की दुकान का उद्घाटन करने श्राया। $\times \quad \times \quad \times \quad \times$
२ सयुराल माना कि पत्नी का मैका होता है, घर जंचाई का मी तो कुछ हक होता है।

रोज जाना बाजार
श्रों लाना ग्राचर
सास के लिये यह तो करना ही पड़ता है। $x \quad \times \quad \times \quad x$
₹ ऐलेक्शन से पहले वोट लेने श्राते हैं बार बार झ्राकर चौखरा दिखाते हैं

सब्ज बाग दिखाया
सबको ही पट।या
अ्रब तो अपनी स्यरत दिखाने को तस्साते हैं।
$\times \quad \times \quad \times$
8 कहते थे हम कुछ्र कर दिखायेंगे ,
जब सुनो बस तारे ही तोड़ लायेंगे।
शादी हुई
भाग पूरे
झ्रब कहते हैं ‘राक एएह रोल’ सिखलायेंगे।
(25)

## 'चि थ सें,

तेज कुष्टा भाटिया बी. ए. हिन्दी (झ्रानर्स)

जीवन के चौथेपन में श्राकर शरीर इतना कृश हो गया है कि श्रधिकतर 'अ्भस्पताल' में ही पड़े रहना पड़तः है ग्रौर वह भी बिल्कुल खाली। अ्रवकाश के समय न जाने जीवन के किस किस कोने से स्पृतियाँ उमर कर मस्तिष्क के ग्रांचल में विसर जाती हैं ! तो उस दिन भी में 'ख्रस्पताल' में खाली पड़ा हुग्रा था ग्रौर मस्तिषक में रमृतियों की घटाएँ बेरोक टोक बरस रहीं थीं। एक चित्र जाता ग्रौर दूसरा ग्राता तथा मैं पहले से भी ग्रधिक ग्राट्मविभोर हो उठता। यौवन काल की मधुमय स्म्रियाँ यदि वृद्धावस्या में भी याद नहीं ॠायेंगी तो फिर कब श्यायेंगी? कभी में लेटा लेटा ही गर्व से तन जाता ग्रौर कभी मधुमक्ती के छत्ते के समान लटकी हुई जंघाग्रों पर हाथ फेर कर ग्रपने ईरीर को जरा ग्रोर ग्रकड़ा लेता ग्रौर तभी बनपन की नटखटता एंव यौवन की चचंलता वृद्धावस्थ। की गंभीरता पर हंस पड़तीं। मैं कौर भी पसन्न हो उठता।

परन्तु मन की गति भी बड़ी विचिच्र है-ठीक सागर जैसी। भाधःवेक्श में मन मनुष्य को प्रसन्नत। की चरम ऊँचाई तक भी ले जाता है अंौर फिर दूसरे ही क्षरा नैराइय एंव दु:खों की गुजान वीधियों में सहसा ग्रकेला हो छोड़े देगा है। यह मन की प्रकृति है यहाँ मस्तिषक का प्रतिवाद काम नहीं करता। बस यही हाल मेरे साथ भी हो गया। श्रचानक मन जीवन के प्रति कुठां, रोष एंव श्राकोश ग्रादि भावों से तिक्त हो उठा ग्रौर ग्राँखें श्यन्त: केन्दित हो उस श्राधात को समभने का प्रयास करने लगीं जो कुछ दिन पूर्व ही मेरे हृद्य पर हुम्रा था। तभी सहसा मैंने ग्रपने शरीर की जर्जरता पर

दृष्टि-पात करके करवट वदल ली, रा।यद मैं अ्रपने विदीर्ण मर्म को श्रौर देखने का साहस न कर पाया। ग्रौर जब इससे भी चैन न मिला तो ग्रपने पडौसी से मांगकर, तकिये का ग्राश्रय लेकर एक उपन्यास पढ़ना श्रारम्भ कर दिया। पहले तो यह कार्यं भी नीरस सा लगा परन्तु छुछ देर के बाद उपन्यास के वातावर्या ने स्वयं ही मुभे ग्रपने में समा लिया। उपन्यासकार ने ग्रपने उपन्यास में प्रेमी ग्रौर प्रेमिका के लम्बे चौड़े चित्र खींच रखे थे। योवन के मधुष्षरा स्वत: ही एक के बाद एक मेरे भस्तिक्क में उभर मेरे मानस को ग्रान्दोलित एंव घ्रालोडित करने लगे। मैं रोमांचित हो ग्रपनी यौवनवस्था में ही रमया करने लगा श्रौर किर तो मुख पर एक श्रसाधाराए सी प्रसन्नता फूट पड़ी जो एक बृद्व के चेह्रे पर मिलनी कठिन ही है ।

परन्तु दूसरे ही क्षरा में सहम गया। कमरे में एक नारी कंठ गूंज उठा-"बाबा ग्राज तो बड़े प्रसन्न दिखायी देते हो.....क्या बात है? कुछ हमें भी तो पता चले?"-मेरी त्कालीन मुख मुद्रा में एक घबराहट एव लज्जा fमशि्रत क्षरिक स्थिरता ग्रा गयी, मानो कोई चोर रंगे हाथों पकड़ा गया हो ! मैंने सिर उठाकर देखा तो ग्राशा के ग्रनुक्रू ही 'नसं' खड़ी थी. हृंथ में दूध का गिलास लिये । मुभे ग्रपनी ग्रोर निहारता देब नर्सं जरा मुककाई घौर मैंने भी उत्तर में पागलों की सी हैसी हैस दो, जैसे मुभे अ्रपनी प्रसम्नता का भान ही न हो। तभी एक विचार ग्राते ही मैं चौंक पड़ा श्रौर मैंने उपन्यास को बन्द करके तकिये के नीचे रख दिया। मुभे भय था कि कहीं इसने मेरे उपन्यास को देख लिया तो ये भी मेरा उपहास करेगी कि वृद हो कर भी एसा

चटकीला उपन्यास पढ़ता है, श्राखिर में है तो ये भी नवयुवती ही । इन लोगों के विचार में ऐसे उपन्यास पढ़ने का श्रधिकार तो केवल युवक —वर्ग को हीं है। फिर इसे ये क्योंकर सह्य होगा कि एक वृद्ध युवकों की रुचि पर श्रपनी भ्राँख लग।ये। उस दिन 'सिनेमा-एाल' में भी तो यही हुग्रा था._.! बस यही सोचते सोचते मैं फिर उदास हों गया श्रीर ‘नर्स की तरफ से उपेक्षास्पद भाव से मुख निरत कर लिया। ‘नर्स’ बड़ी सूक्ष्मता से मेरे चेहरे पर उभरे मनोभावों में परिवरंन को पढ़ने का प्रयास कर रही थी। सम्भवतः उसने मेरी श्राखों में उपेक्षा की भलक स्पष्ट देख ली थी, तभी तो उसने ग्रागे बढ़ कर दूध का गिलास मेज पर रख दिया ग्रौर प्रगाढ़ स्नेह से ग्रपने कोमल करों को मेरी पीठ पर रख, मेरे से जरा दूर ही पलंग पर बंठ गयी। निइचल सहानुभुति तथा भ्रात्मीयता युक्त प्रशन वाचकता उसके चेहरे पर स्पष्ड विद्यमान थी। थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह्ह स्वयं ही पुनः बोली, "बाबा ग्राप ग्रभी तो मुभे बड़े खुश नजर श्रा रहे थे। कमरे में प्रवेश करते ही मैंने देखा था कि ग्राप पुस्तक पढ़ते हुए मन ही मन मुसकरा रहे थे, परत्तु मेरे प्रसन्नतः का कारएा पूछते ही ग्राप ग्रनमने हो गये। बाबा, ซय। मुभ से कुछ गलती हो गयी है ? मैंने तो केवल त्रौपचारिकता वश ही वह्र परन कर डाला था ग्रौर ग्राप एक दम उदास हो गये । श्रच्छा, लाग्रो जरा मैं भी तो देखूँ वह पुस्तक क्या है?" श्रन्तिम वाक्य उसने मुभे बहलाने के से श्रन्दाज में कहा ग्रौर फिर तकिये के नीचे से उपन्यास निकालने लगी! मुभे श्रभना गक्त जमता सा प्रतीत होने लगा। परन्तु मैंने भट से ग्रयनी कोहनी तकिये पर जमा कर उस की चेष्ट को विफल कर दिगा ग्रौर उसे टालने के से भाव में कहने लगा, "कुछ नही बेटी, ये तुम्हारा भ्रम ही है। मैं जसा पहले था वैसा ही ग्रब हू, बिल्कुल वैसा ही ।"

परन्तु 'नर्स मेरे इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुई । वह बार बार मुभे श्रपनी अ्रप्रत्याशित उदासी का कारएा बताने को विवश करने लगी। मुभे केवल इतना ही संकोच था कि वह एक नवयुवती थी श्रीर वैसे भी मजाक उड़ने का भय था। यदि कोई मे रा हम उम होता तो में उसे सारी बात बता कर ग्रब तक श्रपने हृदय का भार हलका कर चुका होता। श्रचानक 'नर्स' उठ खड़ी हुई श्रौर दूध का गिलास उठाकर मेरी तरफ बढ़ाती हुई़ बोली 'सग्रच्छा लो दूध पीलो नहीं तो टंडा हो जायेगा ।',

मैंने दूध पीने से इंकार कर दिया क्यों कि उस समय तक मेरा. मन विकल हो उठा था ग्रीर ‘नर्स' भी दूध पिलाने के लिये ज्यादा जिद्द न करके एक दम पूछ्क बैठी, 'बाबा, ग्रभी श्रभी ग्राप ने मुभे ग्रपनी बेटी कहा है न ?" मैं इस ग्रनापेक्षित प्रशन से r.क६म चौंक उठा श्रौर कहा-
"हाँ कहा, तो?"
"तो फिर क्या श्रपनी बेटी को ग्रपने दु:ख का कारएा नहीं बताग्रोगे’? उसके स्वर में इतन ग्रात्मीया थी कि मेरी ग्रांखें नम हो उठीं श्रौर मैं अ्रब ग्रधिक टाल मटोल करने का दुस्साहस न कर सका । मैंने ग्रवनी ग्रांखों को जरा सिकोड़ कर ‘नर्स' के चेहरे को ध्यान से देखा श्रौर फिर उसे समभाता सा कहने लगा,-"बेटी तुम तो जानती ही हो कंक मनुष्य का जीवन सुख श्रौर दुःख का सांभा व्यापार है, सो जब कभी भी मुभे जीवन के मधुर क्षण ₹भरसा हो ग्राते है तो मैं ग्राट्म-विभोर हो उठता हूँ। पर कुछ दिन हुए मेरे ग्रात्मसम्मान श्रोर स्वभिमान पर एक ऐसी तीखी चोट पड़ी कि में ममी़हत सा होकर रह गयर हूं, ग्रब तो इस दुनिया से मुक्ति चहतता हूं बस मुक्ति—।" "ऐसी भी क्या

बात है बाबा जिसने तुमको इतना मर्महत किया?" 'नर्स श्रत्यन्त ही श्रनुरोधपूर्या स्वर में बीच ही में बात काट कर बोल उठी ग्रौर मेरी श्राँखों में छलके दो श्रश्रुबिन्दु कोरो में ही श्रटक कर रह गये।

मैंने ग्रपपने चित्त को व्यवस्थित किया ग्रौर एक एक षब्द को तोलता सा कहने लगा," बिटिया ये सब बात जान कर क्या करोगी-वृद्र का हृख्य बालक सा होता है। सो एक दिन में ग्रभाज्यवश 'पिकचर' देखने चला गया। संयोग के कुछ्ध ऐसे चित्र एवं वार्तालाप श्राये कि में भूम उठा। य्यास पास बंठे हुए लोगों की चिन्ता किये बिना ही मैं मौज में प्राकर जोर जोर से 'वाह वाह' कर उठा। बस फिर क्या था धुवतियाँ तो एक दूसरे को कोहनी मार कर ग्राँचल के दाँतों तले दबाकर उस्कराने लगी, परन्तु युवक-..'। युवकों का ध्यान श्राते ही मेरे मन में तूफान सा मच गया युवकों के प्रति घृरा। एवं क्षोभ की ज्वाला धधक उठी। मुभे ऐसा प्रतीत हुग्रा कि ग्रावाज नेरे गले से न निकल कर कहीं दूर पानी में ड्रूवते हुए खडुंर में से श्रा रही हो हुदय में उठी घ्रूशा एवं क्षोभ को मैं डगल देना चहता था परन्तु मैं यह सोच कर व्यथित हो उठा कि- "ये' नर्स’ भी तो नवयुवती ही है। ये नवयुवकों की बुराई भला एक पोपले मुख से कैसे सुन सकती है। गखिर ये सज युवक हैं तो एक थैली के चटे बट्टे। बुढ़ापे पर तो व्यंग कसना इनका परम धर्म है।' बस इसी बात का मुभे सशंय था ग्रोर यही सोचते सोचते में कीधित हो मन ही मन कहने लगा- "क्या ये भी युवक हैं- नीच कही के-सभ्यता का तो नाम निशाधन भी नहीं इन में $\cdot$ - - बल़े शिक्षित बने फिरते है - -किसी की भावनाओं को ठेस पहुं चा ना तो इन के लिये खेल ही है हमने कभी इतनी उच्छ्ट ङ़लता नहीं दिखाई, हालां कि हम पढ़े इन से भी कम थे-हमने कभी ग्रभने बड़े -बूढ़े

की खिल्ली नहीं उड़ाई $\cdots$-परन्तु ये युवक कितने उदड हैं. इ- इनके समने छोटा बड़ा सभी एक हैं धिक्कार है ऐसे यौवन पर ${ }^{-\cdots} \cdots$ ये तो योवब के नझे में यह भी मूल जाते है कि इनका श्रपना भी ऐसा समय ग्रायेगा- धिक्कार है धिक्कार ——"।

युवकों के प्रति घधकते कोध की भावना को मैं उन्हें धिक्कार कर ही शान्त कर लेना चाहता था । परन्तु मेरा हृदय ग्रभी भी शान्त न हुग्रा था वारबार मन में यही बिचार ग्राकर मुभे भंभोड़ जाते- "ग्राखिर इन यवकों को ग्रधिकार ही क्या है मुभ पर व्यंग कसने का …-म्में भी युवक था परन्तु क्या वृद्ध होने के कारए मैं मनुष्य नहीं रहा"•••क्या मेरा ह्दृय नहीं रहा-क्या मुभे ग्रब दुनिया में ये भी श्रधिकार नहीं कि में चुगली स्मृरखा कर सकृं …-क्या मैं अ्रपने जीवन के मधुमय ศिनदी को भी याद न करु ……क्या श्रब यह दुनिया मुभ से यही चाहती है कि किसी मीठी चीज़ को खाकर में उसे मीठा तक न कहू..........में भावों का ग्रनुभव तो करूँ परन्तु वृद्ध होने के नाते उन्हें 'ग्रनुभावों' द्वारा व्यक्त न कहू" .....? ?..?......? .....? ?. में वृद्ध सही, पर कोई युद्ध-बन्दी तो नहीं कि श्रब ोग हैंसने-बोलने उठने-बंठने.....पहनने उतराने र भी प्रतिबन्ध लगा दें ...में श्रब भी मनुष्य .मानव-हृदय में उठने वाली प्रत्येक भावना में भी उठेगी हो..... परन्तु ये युच्क्वर्ग ड़से देख कर जलता क्यों है ....क्यौं श्राखिर क्यों...?. ?"

बार-बार मेरे चेहरे पर कोध एंव विषाद की रेखाएं खिच खिच रह जाती थीं। कुछ देर विचारों मै निमग्न रहने के बाद हारे हुए जुग्रारी की सी बेबसी में मैंने टिर उठा कर 'नर्सं' की प्रोर देखा। 'नर्स' न जाने मुभे कितनी 'र से एक टक देख रह्री

बी। मेरे सिर उठाते ही वह बोल उठी- "तो क्या किया, उन युवकों ने वाबा ?"

मानों किसी ने पटाखे पर fिगारी धर दी हो। मे तिलमिला कर चीख उठा- "करना क्या था ? जो सदा से करते ग्राये हैं .....तानों की बौछारें... बेहूदी हंसी......तक्ष्टी उ्यंगों के जलते स्यार मुभ पर ग्राने लगे .....कोई बोला-श्ररे भाई किर से जवानी चढ़ने लगी है.....पीछे से किसी और की श्रावाज श्रायी— श्ररे वाह..... रे बुड्ढे वाह ..ग्रोर किसी ने कह ही दिया-देखो बुडूदे भी इइक फरमाने चले हैं-_-_बद तमीज कहीं के से कांपने लगा था। कोष के कारसा ही मेरे शब्द भी टूट टूट कर निकल रहे चे ज्रोर स्वर में शायद काकी हद सक तेजी ॠ्रा गयी थी। सान्तवना देने के लिए 'नसं' ने श्रपना हाथ मेरी पीठ पर रखा ग्रैर कहा- "छोड़ो बाबा, ये लोग झ्रपने सामने किसी को कुछ समभते ही नहीं -" ये कहते हुए वह निरतंर मेरी पीठ पर अपना हाथ केग्ती जा रही थी। वहां युवकों ने मुभे मर्मात किया था, मुभ पर व्यमं किया था घ्रोर यहाँ एक युवती की सहानुभुति पाकर यूँ तो मुभे थोड़ा सा ग्राइचर्य भी हुग्रा परन्तु में प्रन्दर ही श्रन्दर विलख उठा। मन ‘नर्सं के प्रति भ्रगाध कृतज्ञता के भाव से भीग गया। 'नर्स' एक बार फिर कह उठी बाबा शान्त हो जाइए......युवकों से गलतियाँ तो होती ही रहती हैं 1 " मिंने सिर नीचा किये, दीर्ष निख्वास लेते हुए तथा हाथों को मलते हुए कहा- "ठीक कहती हो बेटी .....वास्तव में युवकों का दोष ही क्या है......

ग्रत्न हमारा जीवन है ही क्या बेटी..... श्रब हमारा जीवन नि:सार है इस दुनिया में हमारा जीना बेबसी प्रोर प्रनादर का जीना है... क्योंकि बेटी में शब वृद्द हूं .वृद...हाँ वृद। 1 मेरे इन शब्दों में घ्रसीम वेदना छलक रही थी। 'वृद्ध' शब्द कहते ही में मोन हो गया। मेरा गला भर ग्राया और्रोर जीवन के प्रति भी गहन निराशा का भाव ग्राये बिना न रह सका । ग्रांखें फिर से सजल होने लगी। 'नसं' ने मेरा ध्यान दूसरी तरफ ग्राकषित करने के लिये कहा- "बाबा, ये क्या ग्रभी तक फटे पुराने कपड़े पहने हो_इइन्हें ग्रब फेंक दो....प्रस्पताल' से ग्रभी तुम्हें नये कपड़े मिलने वाले हैं

कभी-कभी सत्य प्रत्यक्ष रूप से कहे नहीं जाते परन्तु ग्रभ्र्यक्ष रूप से स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। (यद्याि ‘नस’’ ने ये वात सहानुभूति पूर्वक ही कही थी) में लड़खड़ाती जिह्वा से बोला- "तुम ठीक कहती हो बेटा ....-ये श्रब पुराने हो गये हैंबिल्कुल पुराने इनका श्रब महतंव ही क्या है-मेरे जीवन की तरह—फेंक दो बेटा....इन्हें जाहर फेंक दो.......इन्हें फेंकना ही होगा......इनका श्रब ग्रोर हो ही वया सकता है-... मेरे जीवन की तरह ये भीं बिल्कुल निरथंक हैं...निरर्थक है.....इन्हे जल्दी फेंक ही दो ...स्रच्छा है...ग्रब इनका फैंकना ही श्रच्छा है - ?

हतना कह कर मैं तकिये में मुँह छिपा कर जोर जोर से सिसकियाँ भरने लगा। श्रोर ‘नर्स’ म्रावाक् खड़ी रही....मौन बिल्कुल मोन।

## दो मल लि याँ

द्वारा अ्रार० के० चित्रा बी० ए० ग्रानर्स हिन्दी द्वितीय वर्ष
(दोपहर का समय, एक मनुष्य सोया हुग्रा, खराटों से मरा हुम्रा एंव सのनों में सोया हुग्रा)

पस्नी : श्रजी मुनते हो, हकीम के पास जाश्रो, ग्रौर जाकर कहो कि मुभे नींद नहीं ग्राती ग्रोर रात को सोया सोया बडबडाता रहता हूह ।"

पति : "धत् त्रे की, कमबस्त, तू मुभे सोने नहीं देगी नाक में मेरे दम कर रखा है, न दिन को चंन ग्रोर न रात्त को ग्राराम से सोने देती हो कभी कहती हो डाकटर के पास जाग्रो ! कभी कहती हो हकीम के पास जाश्रो, यह सब सुनते सुनते तो...तो मेरे कान पक गये हैं ।"

पर्नी : ग्रो फो श्राप भी श्रजीव किस्म के श्रादमी हो, श्रापको हकीम कोई खा तो नहीं जाएगा वह तो केवल तुमको दवा देगा $\qquad$ दवा, जहर नहीं ! ग्रगर प्रापको डर लगता है तो लो में भी साथ चले चलती हूँ।"
(हकीम के पास)

दोनों : नमस्ते हकीम जी,
हकीम : "नमस्ते।"
हकींम : "कहो कंसे श्राना हुग्रा !"
पत्नी . "बस यू" ही, बात यह है कि इनको एक प्रकार का रोग हो गया है कि रात को सोते समय बड़बड़ाया करते हैं ग्रोर बडबड़ाते

समय कभी कभी भागने लगते हैं। में तो बीसियों बार इनका इलाज करा चुकी हूं पर इनका रोग तो बस बाबा.......भागने का नाम नहीं लेता ! केवल सोते समय एक ही रट लगाये रहते हैं मुभे बचाझो-......मुभे बचाश्रो.......बचाश्रो ....बचा.. बचा....न...! घर किर बच्चों की तरह मचलने लगते हैं।

हकीम : "वया यही बाते है जनाब ?"
(कहते हुए परित की श्रोर देखता है)
पति : "हाँ (गहरी सास लेकर) बात तो ठीक है हकीम साहब! वात दरश्रसल यह है कि रात को जो मुभे सपना श्राता है वह...वह... वह एक लड़......लङ...की का श्राता है। ${ }^{\prime \prime}$

पत्नी : "क्या कहा......लड़की का ! हूँ तभी तो में कहती. $\qquad$
हकीम : "देखिये श्राप जुप कीजिये वरना मं मरोज को देखना छोड़ दूँगा।"

हकीम : हां जनाब ग्राप श्रागे कहृते जाइये $\qquad$
पति : "हकीम साह्हब क्या बताऊँ वह लड़की घ्रत्यन्त्त खूब सूरत है, श्रत्यन्त सर्मीली घ्रोर वह मुलाब की कली की तरह विकसित हो रही है च्रोर उसकी श्राँखे श्रोफ क्या बताऊं।

हकीम : "क्या ग्राप उस लड़की को जानते हैं।"

पति : "हाँ...हां... बहुत श्रच्छी तरह! इतना ही नहीं बल्कि उसको श्रण्छी तरह पहचानता भी हूँ ${ }^{\text {l }}$

पत्नी : तभी में कहती हू कि रात को यह $\qquad$ $1^{14}$

हकीम : देखिये मंडम ग्राप मरोज को परेशान मत कीजिये, मुभको भ्रच्छी तरह देखने दीजिये ताकि मैं उसके रोग का पत! लगा सक्षँ।"

हकीम : "कहाँ ? रही है ?"
पति : "वह हमेशा मेरे साथ रहती है, खाती है, बैउती है ।"

हकीम : "क्या भाप कभी उससे मिलते भी हैं।" "हाँ जनाब, कह तो रहा हूं कि वह साथ बैठती है, खाती है, फिर मिलने का सवाल ही पैदा नहीं होता इतना ही नहीं बल्कि स्बूब मीठी ₹ बातें होती है श्रोर बातों में हम इतना लीन रहते हैं कि पता भी नहीं चलता कि रात कब हुई ग्रोर दिन कब हुम्रा।"

हकीम : श्रच्छा वताइये जनाब, वह कौन है ?

## (द्वितीय मलक)

मियाँ : "अंग्रो $\qquad$ ग्राश्यो बेगमर साहिबा क्यों क्या तबीयत ठीक नहीं ! चलो थोड़ीं देर नदी के किनारे की संर कर श्राएँ 1 ' नदी के तट के पास थोड़ा बंठते हैं और्र इ इतने में एक कैमरामैन हाथ में कैमरा लिए हुए भ्भाता है।

फोटोर्राफर : ग्रा_..हा-....किताना सुहावना मोसम है, कितना रमएीक स्थान है यह ऊँचे ऊँचे पेड़ ग्रोर घह खिली हुई डालियाँ ग्रौर उस पर गुनगुनाते हुए यह भवरें, नये नये पल्लव ? क्यों न मैं इस प्राकृतिक की फोटू ले लूँ !

नमयां : श्रो $\qquad$ श्रो कैमरे वाले $\qquad$ जरा इधर तो भाना ।

फोटोग्रफर : "क्या बात है ?"
मियाँ : क्या बात है ? क्या बात है ? लगा रखी है जंसे तुम कुछ जानते ही नहीं.-.....। तुमने मेरी बीबीं का फोटो कयों लिया ?

पति : हकीम साहब, बता दूँ सच, ! वह कौन है । हकीम : हाँ हां बताग्रो सच, सच ! कोन है ?
 वह-_...................... तो।

हकीम : "बताग्रो, बताग्रो।"
पति : वह-- वह मेरी बीबी है।"
( श्रोर तीनों की हँसी गूँज उठती हैं।)

फोटोर्रोफर : "नहीं जनाब___मिंने श्राप की बीबी का फोटू नहीं लिया है।" "भूठ बोलता है तुने मेरी श्रांखों के सामने मेरी बीबी का कोटू लिया है ।"
"नहीं साहव में कोन होता है हर्रापकी बीबी का फोटू लेने वाला, में तो केषल इन पेड़ों ग्रोर कलियों जिस पर मंडराते तथा गुं क्जन करते हुए भवरों का फोटू लिया है ग्रोर कसी का नहीं। ।'
"मँ कहता हैं तुमने फोट् लिया है क्योंकि में जनता हू कि तुम विज्ञापन के द्वारा ग्रपनी वस्तु की माँग बढ़ाना चाहते हो ! ग्रौर इसके लिए तुम किसी हसीन युवती का फोटू लेना चहते हो जो कि ऐसे रमएीक स्थान पर बैठी हो। लाश्रो इधर लाग्रो अ्रपना कैमरा में तुम्हारी रील फाड़ दूँगा।"
"भापको कंसे यकीन दिलाऊँ जनाब ! श्रापकी बोनी से यह रमयीक स्थान भ्रत्यन्त सुन्दर है फिर भला मैं क्यों लगा अ्रापकी बीबी का फोटू लेने।"
(fियाँ कोध में अ्राकर)

$$
\begin{aligned}
& \text { fियाँ: "क्या कहा तुमने, मेरी बीबी का फोटू नहीं } \\
& \text { लिया ? कोन सी बुराई हैं इसमें कया यह } \\
& \text { फूलों की तरह सुन्दर नहीं है ? बताश्रो- } \\
& \text { बताग्रो नहीं-नहीं तो तुम्हें में पीट } \\
& \text { दूंगा।" }
\end{aligned}
$$

जबाब क्यों नहीं देते बताग्रो $\qquad$ बताश्रो
$\qquad$ बता $\qquad$ -बत.....ब।

फोटोग्राफर : ‘हाँ लिया है' ग्रोर मुस्कराता हुग्रा वह वहाँ से चल देता है !

(१) 'प्रेम में, ज्ञान में धौर सौँदर्य में कभी श्रति नहीं होती, जब ये गुरा पूर्या चुद्ध रूप में समभे जायें
(२) 'श्रध्ययन खण्डन घ्रौर असत्य सिद्ध करने के लिये न करो, न विश्वास करके मान लेने को करो, न बातचीत श्रौर विवाद करने के लिये करो बल्कि मनन श्रोर परिशीलन के लिए करो'
-बेकन
(3) 'व्यथा ग्रौर वेदना की पाठशाला। में जो पाठ सीखे जाते हैं, वे पुस्तकों ग्रौर विश्वविद्यालयों में नहीं मिलते' - अ्रज्ञात
(४) 'एक बार अविशस्त ठहराये गये का कभी विशवास न करो'

## प्रगति-शील साहित्य

डॉ० रामदत्त भरद्वाज डी॰लिट०, पीएच०डी॰, एम०ए० (ग्रय), एलएल॰बी०
'प्रगति' राव्द का श्रर्थ है चलना, बढ़ना, उन्नति। प्रगति रीलता ग्रौर प्रगतिवाद में श्रन्तर है ।

## ग्राक्कथन

डॉ०० गुलाबराय के ग्ननुसार, वीरगाथाकालीन हिन्दी के साहित्य में राष्ट्रीयता का अ्रभाव खटऋता है, तथापि उसमें भी भ्राक्रमराकारियों के प्रति हिद्रोह की भावना प्रकट है। सन्त कवियों ने समता के भाव का प्रतिपादन किया; कबीर ग्रौर गुरु नानक का प्रभाव उत्तर कालीन कवियों पर स्पष्ट है। वरांव्यवस्था ग्रौर मूर्ति-पूजा पर कुठाराघात हुग्रा, श्रौर 'जाति-पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सों हृरि का होई' इस नारे ने वैष्टावों पर भी कुछ्छ कम प्रभाव न डाला। मर्यादावादी गोस्वामी तुलसीदास भी ग्रपनी परिस्थिति से प्रभःन्चित हो बोल उठे :-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख वलि, वनिज के बर्गनिन चाक, रो न चाकरी।।

## तथा

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नुप श्रवस नरक ग्रधिकारी।। इन युक्तियों में साधारए जनता के प्रति तुलसी की सहनुभूतित ग्रौर समवेदना स्पष्ट हैं । सूरदास भी ‘खेलत में को काको गुसइयाँ’ अ्रादि झब्दों के द्वारा समता का पक्ष लेते प्रतीत होते हैं। भारतेन्दु बाबू हरिइचन्द्र ने भारत की दुर्दशा पर चार ग्राँसू बहाये ग्रोंर बताया कि भारत की दरिद्रता का कर श ग्रंग्रेजों के द्वारा भारतीय धन को विदेश

भेजना या राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरा गुष्त की 'भारत-भारती' तळकालीन देश की श्रवस्था में प्रगति और राष्ट्रीयता को प्रोस्साहित करने वाली सिद्ध हुई । मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों में पुलिस, जमींदार अ्रादि के श्रत्याचार भोली जनता ग्रौर श्रमहाय किसानों पर चित्रित किये गये हैं। ग्रौर भी ग्रनेक कवि ग्रौर लेखकों ने समय-समय पर श्रपने सामर्थ्य के ग्रनुसार जनता-जनार्दन का पक्ष लिया, यह सब प्रगति का द्मोतक है। परन्तु प्रगतिवाद' का ग्रर्थ कुछ भिन्न है। यह वह नाद ग्रागे बढ़ने में विशवरस रखता है, परन्तु इसकी विचारधारा मार्षं सदादी या साम्य बादी दृष्टि के ग्रनुकूल है। ‘प्रगतिशील’ साहित्य किसी वाद-विशेष से संपृक्त नहीं, परन्तु ‘प्रगतिवादी’ साहित्य साम्यवादी म:ग कां श्रपनाने के लिये उन्मुख है।

## प्रगतिबाद की उत्पति

सत्रहवीं राताब्दी के पइचात् न्ज्ञानिक चिन्तन धीरे-धीरे बदल रहा था, ग्रन्ध विश्वास घटने लगा ग्रौर तर्क बढ़ने लगा था। कांलमाकर्स के दर्शान ने जोर पकड़ा था। उसके द्वन्द्धात्मक भौतिकवाद में ईइनर-ईौतान, पाप-पुएय, स्वर्ग-नरक सब तिरोहित हो गये । भारत में प्रगति का बीज भारत की राष्ट्रयी भावना के रूप में, महींबि दयानन्द, राजा राममोहनराय श्रादि के समाज-सुधारों में बाबू हरिरचन्द्र मैथिली सराएा गुप्त तथा ग्रन्य कवियों की रचनाशों में तथा काँग्रै स श्रौर श्रंग्रेंजी शासन के संघर्ष में विद्यमान था । 'मेरठ षछयन्त्र केस' के पइच्चत, रूस की वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था ॠ्राकर्षएा का केन्द्र बन

गयी। मजदूरों में संघटन का भाव जाग्रत हुग्रा ग्रोर ट्रे उ-यूनियनों की जड़ जमने लगीं। सन् १६३ð के लगभग, भारतोय कम्युनिस्ट पार्टीं ग्रौर समाजवात्री दल की स्थापना हुई । ऐसी राजनौतिक परिस्थिति ने साहित्यिक प्रगति का मार्ग परिष्कृत कर दिया श्रोर' जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, 'प्रगतिवाद' छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में उपस्थित हुश्रा। सन् ${ }^{\circ} ₹ ३ ६$ में सर्वर्शी मुल्कराज श्रानन्द्ध श्रोर सज्जाद जहीर के उद्योग से 'भारतीय प्रर्गतिशील लेखक संघ' की स्थपना हुई । इसके प्रथम श्रधिवेशान के सभाप्पति प्रेमचन्द जी हुए ग्रौर दूसरे के डा॰ रवींद्द्रनाथ ठाकुर । ‘प्रोप्रसिव राइटसं एसोससयेशन’ जो श्रन्तराष्ट्रीय स्थापना है संस्था हो चुकी थी। सन् १८₹७७ न विशाल-भारत' में श्री शिदनानन्द्द चोहान ने भारत में प्रगतिशील साहित्य की ग्रावइयकता' पर एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने बताया कि कला कला के लिये नहीं वरन् संसार को बदलने के लिये है।

उन्हीं दिनों द्वितीय महा युद्ध छिड़ गया श्रे तक रहा। राष्ट्रीयता की भानना से देश गूँज उठा ; स्वतंग्रतः के श्रान्दोलन ने जोर पकड़ा, बंगाल में ग्यकाल श्राया, ग्राजाद दिन्द कौज के सिपाहियों पर मुकदमे चले रूस की विजय, ग्रौर हिटलर-मुसोलिनी की पराजय हुई।

## मार्क्सवाद

पर्गतिवादी विचारधारा की ग्राधार-शिला मार्क्सवाद है, जंसा कि ऊपर इंगित किया जा चुका हैं; इस वाद को साम्यवाद भी कह देते है। इसके प्रवर्त्रक काल मार्क्स हैं जिनका समय १द६६ ई० से लेकर $९ €\} ६$ ई०तक है। माक्संवादी विचार धारा का विभाजन त्रिविष हो सकता है-(१) द्वन्द्वात्मक भोतिक विकासवाद, (२) मूत्य वृद्धि का सिद्धान्त प्रौर (३) मानव सभ्यता का|विकास।
१. द्वन्द्धर्मक भौतिक विकासवाद में ईरवर के लिये स्थान नही संसार की उत्पत्ति नहीं दृई किन्तु उसका विकास धीरे-धीरे हुग्रा। यहृ विकान जिस शाक्ति के द्वारा हुग्रा वह ग्राध्यादिमक नत्रें थी, भौनिक जगत् ही विकास का कारएा है। घ्रात्मा-परमाल्मा, स्वर्ग-नरक तथा मृत्योपरान्न स्थिति का श्रस्तित्व नही है। विकास को परिचालिए करने वाली प्रवृत्ति को संघर्ष कहते है, क्योंकि दो विरोधी शा्तियों के संघर्ष से तीसरी राक्तिं या बस्तु का विकास होता है। घ्रतएव इस विकास को त्मक कहते हैं।
२. मूल्य वृद्धि fसद्धान्त के ग्रमुसार वस्तु कामूल्य बढ़ जाता है । इसके चार अंग हैः मूल पदर्थं, स्थूल साधन, श्रमिक का श्रम, ग्रोर मूल्य-वृद्धि । यद्यपि लाभ श्रमिक के श्रम पर निर्भर होता है. तथापि पूंजीपति ही लाभ के श्रधिकर्श भागको हढ़प लेता है। घ्रतएव मावर्सं के श्रनुसार'ं संसार में दो ही प्रकार के वर्ग सम्भव हैं-खोषक हौर शोषित' ग्रथवा पूं जीपति ग्रौर श्रमिक ।

३ कालं मावर्स ने मानव सम्यता के विकास की नयी व्याख्या की है ।जससा कि कहा कहा जा चुका है संसार में दो ही वर्ग हैं- शोषक ग्रौर होषषत। मानवसभ्यता का इतिहास भी इन दो के संघर्षों की कहानी है। इस कहानी को चार युग में विभक्त किया जा सकता है-दासयुग, सामतयुग, पूंजोयुग, ग्रौर साम्यवाद युग। इन में से प्रत्येक युग उत्तरोत्तर विकास का रूप है। अ्रत: लक्ष्य है साम्यवादी समाज व्यवस्था को स्थापित करना जिसकी पूर्ति के लिये हिसात्मक कान्ति र्वजित नहीं, प्रत्युत जिसमें झोषषत वर्ग को झोषक वर्ग के विरद्ध कान्ति करने के लिये उत्तेजना प्रदान की जाती है ।

## दार्शनिक ग्राधार

कालंमार्द्स के द्वन्द्वाॅमक भीतिक चिकासषाद में विकास की भावना स्पष्टत: डारविन के विचारों से ग्रौर भौतिकता फायरबाखसे प्रेरित है, द्वृद्धात्मक रूप हीगल के डाइलंक्ट्रिक के है। हीगल के पहले भी उसकी विचारधारा के बीज प्राचीन काल में विद्यमान थे। यूनानी 'डाइलेगो' शाब्द से 'डाइलेकिटक' निष्पन्न है, जिसका शर्थ है वाद-विवाद। यूनान में वाद-विवाद वह साधन था जिसके द्वारा एक दूसरों की बातों में, तारकक असंगतियों आौर प्रात्मविरोध की श्रोर संकेत कर सत्य का प्रन्वेष्या किया जाता था। वहाँ कुछ ऐसे विचारक भी थे जो यह स्वीकार करते थे कि सल्य की उत्पत्ति दो विरोधी बातों के संघर्ष में होती है। ल्लंटो ने श्रपनी दार्शनिक रचनाम्र्रों में इसी पद्धति का श्रनुसरा किया है। द्वद्वात्मक प्रयाली की तीन विशेषताएँ हैं-प्रथमत: हुन्दात्मक प्रसाग्ली प्रत्येक विकास का लक्षरा है ध्रोर इतिहास उसी लक्ष्य की प्रान्ति करता है। द्वितीयतः द्वन्द्ब-सिद्धान्त किसी एक श्रंग-विशेष काग्रध्ययन नहीं करता क्यों कि किसी 'ग्रंग' का ग्रध्ययन बिना 'सम्पूर्गा' के ग्रध्ययन के नहीं हो सकता। ग्रतः 'पूर्गा' ही समग्र सल्य है श्रैर 'य्यंग' ग्रांशिक सर्य है। सम्पूर्यां की सापेक्षता में ही श्रंग का श्रसितत्व है। तृतीयतः इस सिद्धान्त के श्रनुसार वास्तविकता गत्यात्मक है ग्रोर उसी गत्याइ्मकता का कारएा वास्तकिता की विभिन्न घ्रवस्थाएँ हो जाती हैं। गत्याट्मकता ही विकास है जिसमें एक ग्रवस्था को दूसरी ग्रवस्था में बदलने के लिए एक निशिचत प्रयाली का पालन होता है।
‘विकासक त्रयी’ ग्रथवा डेवलपभैंट ट्राग्रो का रूप इस प्रकार है:-जो ग्रवस्था स्थिर है औौर जिसका हम श्रध्ययन करते हैं उसे ‘वाद’ ग्रथवा 'थीसिस' कहते हैं। उक्ष दोनों श्रवस्थाश्रों से एक

तीसरी श्रवस्था का जन्म होता है, जिसे संवाद ग्रथवा ‘सिंयैसिस‘ कहते हैं। इस श्रन्तिम श्रवर्थः में उक्त दोनों ग्रवस्थग्म्रों के कुछ श्रंग विद्यमान रहते है। ग्रतः इस सिद्धान्त में चार तत्त्व लक्षित हैं। (१) विरोधों की एकता, (२) विरोधों का श्रापस में संधर्षं (३) इस संघर्ष से नयी समन्वित श्रवस्था का जन्म ग्रौर ( $($ ) वाद से संबाद तक का परिवर्त्तन जो माखा से गुखों की ग्रोर चलता है । मार्क्स श्रोर हीगल के लिये यही गत्यात्मक सत्य है ; परन्तु यदि हीगल के लिए वह सत्य 'प्रत्यय' में (ग्राइडिया) विद्यमान है तो मावर्सं के लिये वह जीवन की 'भौतिक' परिस्थितियों में उपस्थित है।

## ऐतिहासिक भौतिकवाद्

मार्क्स के अभुसार मानव-सभ्यता का समस्त इतिहास. शोषक घ्रौर शोषित, इन दो जातियों या दर्गांमें बाँटा जा सकता हैं श्रौर इतिहास को चार युगों में । पहला युग दासप्रथा का था, जबकि मालिक का पूर्या ग्रधिकार दास के व्यक्तक्व, उसके श्रम, उत्पप्ति के साधन, एवं उत्पादन पर था। दूसरा युग सामन्त-प्रथा का था, जबकि सामन्त का श्रधिकार नोकर के व्यक्तिर्व को छोड़कर श्रौर सब पर था। तीसरा युग भूं जीवाद का हैं, जिसमें पूजीपति का ग्रधिकार मझदूर के व्यक्षित्व और उसके श्रम को छोड़कर उसके उत्पत्ति के साधन गर उस्पादन पर है। ः्राजका युग पूँजीवादी है। काँलं मावर्स का लक्ष्य साम्पवादी उस चोथे युग की स्थापना करना था जिसमें मजदूरी की प्रतिनिधि सरकार उत्पादन के समस्त साधनों पर नियंत्र्ा कर आ्रौर प्रट्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम के ग्रनुसार फल प्राप्त हो सके। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये हिंसाएमक कान्ति का निषेष नहीं, जसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है।

## प्रगतिवाद की विशेपत:एँ

जो दर्शन में द्वन्द्वार्मक भौतिक विकासवाद ग्रौर राजनीति में साम्यवाद है, वही साहित्य में प्रगतिवाद कहलाता है । इसवाद की कुछ विशेषताएँ ये हैं। प्रथम हह धर्म, ईइवर ग्रोर परलोक का विरोध । प्र्गतिवादी, कला के माध्यम से, ऐसे नारे लगता हैं, यथा : ईइवर श्रसफल हो गया है, घर्म ग्रफीम का नशा है। द्वितीय है पूँजीयति के प्रति धृएा का प्रचार। प्रगति वादी रचनाश्रों में पू जीपति को म्र्यन्त स्वार्धं’ कपटो ग्रौर कूर प्रायः बताया गया हैं । तृतीय है इोषित वर्ग के जीवन की दीनता ग्रौर कटुता का चित्र्या ।

प्रगतिवादी लेखक प्राय: किसान-मजदूरों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने के लिये उनकी दयनीय दश्रा अंर जीवन की विषमताश्रों का चिः्रा करता है। चतुर्थ है नारी के प्रति यथार्यवादी छछष्टि कोरा। प्रगतिवादी कवि महलों-वाली राज कुमारियों की ग्रेेक्षा खलिहानों में काम करने वाली स्वस्थ कृषक-बालाग्यों एदं मजद्रारनियों के निच्ना़ा में ग्रुधिक रुचि रखता है । पंचम है यथार्ध के प्रति मोह प्रगतिवादी को यथार्थ के परिचिच्राा में भी श्रभिएचि है। साधारशा वस्तुम्यों में की सौंदर्य की प्रतीनि होती है। उसे तो :-

पीले पत्ते टूटी टहनी, छिलके कंकर पत्थर ।
कूड़ा करकट सब कुछ भू पर लगता संर्थऋ सुन्द्र ।।
षष्ठ है सरल शैली । प्रगतिवादी केवल सुगठित जनता के लिये नहीं लिखता; वह तो जन-साधारएा के लिये रचना करता है। उसे साहित्य की प्राचीन रूढ़ियों में प्रककर्षरा नहीं, अ्रतः उसकी दृष्टि में, काव्य के लिये, छन्द प्रौर ग्रलंकार ग्रावशयक नहीं।

## प्रगतिनादी़ी रचना के कुछ्ध उदारहाग

प्रगतिवःद से शकचित् प्रभावित श्री सुमिश्रानन्दन पन्त श्रपनी कत्पना को श्राकारा से पृथ्वी पर इस प्रकार लाते हैं :-

ताक रहे गगन?
मृत्यु नीलिमा गहन गगन ?
निस्प्दन्द झून्य निजंन निस्वन ?
देखो भू को स्वर्वाक भू को,
मानव पुसय प्रू को ।
निराला जी 'विधवा' में उसके दु:ख से पिघले हैं श्रौर उन्होंने 'कुकुरमुत्ता' में गुलाब को चुनौती दे डाली है। दिनकर जी ने भी निरचय कर लिया कि:

भाज न उड़कर नील कुंज में, स्वप्न खोजने जाऊंगी ।
ग्राज चमेली में न
चन्द्र किर्याों से चित्र बनाऊँगी।
जीवन की विषमता को देखकर दिनकर जी व्याकुल होकर इस प्रकार बोल उठे :-

इनानों को मिलता दूघ दही बच्चे भूखे तड़पाते हैं ।
मां की हड्डी से ठिठुर चिपक जाड़ों की रात विताते हैं।
युवती की लज्जा वसन बेच भ्रव ब्याज चुकाये जाते हैं।
fिलमानिक तेल फुलेलों पर पानी सा द्रघ्य बहाते हैं ।।

श्री रामेश्वर गुकल अंचल भी किसानों की दीनावस्था से त्रीित हो लिखते हैं-

इन खलिहानों में गूँज रही
किन ग्रपमानों की लाचारी।
हिलती हद्डी के बाँचों वे
पिटती देखी धर की नारी।
युग युग के घंख्याचारों की
श्रकृतियाँ जीवन के तल में।
घिर घिर कर पू"जी भूत हुई
ज्यों रजनी के छाया छल में।
चन्द्र किरा सौनरिक्ता जी की पुकार है-
दुनिया के मजदूर भाइयो
सुन लो एक हमारी बात।
सिर्फ एकता में है बसता
इस दुनिया के सुख का राज ।
श्री नरेन्द्र शर्मा का उपदेश़ है कि-
है जीने का अधिकार नहीं
हमको किस्मत की मर्जी पर ।
जढ़ रुढ़िवाद के राव को जो जीवित कहता है प्राहंग्राज ।।

श्री श्रिवमंगलसिंह 'सुमन' लाल सेना के साथ मनोवेग से इस प्रकार श्रागे बढ़ते है -

बलिन भ्रब नजदीक है। फासिस्टों की कालरात्रि में घोर घटा घिर ग्रायी चली लाल सेना ज्यों चलती सावन में पुरवाई। 1

श्रंचल जी श्रपने रबर ग्रथवा ग्रह्नन्द छन्द में मजदूर की ग्रन्धी लड़की के सम्बन्ध में गाते है -

वह मजदूर की भ्रन्धी लड़की
कुम्हलाती, बुभ्भते चिराग-सी टिम-टिम करतीं.
देख न पाती कच्ची ध्रूप रोशनीं उजली-
फूली-फूली रातें।
बीन रहा ग्रांगन में बिखरे
किस दिन के भूँठन के टुकड़े उसका छोटा भाई
भिल की सीटी बजते हीं तड़के जाते माँ-बाप
श्रॉंखें मलते छोड़ जन्हें चुपचाप जहाँ सुलग उठती दित चढ़ते
मीठी-मीठी दोजख की-सी श्राग। यहाँ श्रंधेरे ख़्दन में ख़ामोश
सूखो, जर्जर कभी-कभी बेहोश पड़ रह जाती
वह मजद्रा की शंधी लड़की।।

## प्रगतिवाद़ के कतिपय दोष

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का प्रचार बड़ी रीघ्रता से हुग्रा। कुछ्घ ग्रालोचकों की समभ में यह वाद उतनी स्थिरता प्राप्त नहींकर सका जितनी श्राशा की जाती थी। लगभग २४ वर्ष की श्रवधि में, आ्रालोचक कहते हैं, प्रगतिवादी साहिए्य कोई ऐसी विशिष्ट रचना नह्रीं दे सका जिसे ‘कामायनी’ या 'गोदान’ के स्तर पर रखा जा सके। यद्यवि हमें प्रयतिवाद से कोई विरेष सहानुभूर्भित नहीं, तथापि हम पूछ सकते हैं कि क्या भूत काल में भीं हर पच्चीसकें वर्ष में 'रामायया' या 'महाभारत' जसे महाकाब्य भर 'शकुन्तला' घ्यववा ‘उत्तर रामचरित’ जंसे नाटक लिखे गये थे ? यदि प्रगतिवादी साहित्य में ग्रभी तक ग्रल्युच्च कोटि की रचना नहीं है, तो उससे स्वयं प्रगतिवाद के महत्व में क्या कमी श्रा जाती है ? हाँ, प्रगतिचाद में, जैसा ग्राजकल है, निम्नललखित कतिपय बातें श्रवझय खटकती हैं।

प्रथमत : प्रगतिवाद ग्राध्यानिमकता का पूर्गा विरस्कार करता है। इस विषय में इतना श्रवइय मानला पड़ेगा कि भारतीय साहित्य में ॠध्यातिमकता पर श्रावइयकता से ग्रधिक ग्राग्रह किया गया है. कि-तु जब तक वच्चा रोता नहीं तब तक मा भी उसे दूध्र नहीं पिलाती। स्यात् इसी कारएा प्रगतिवरदियों को भौतिकवाद श्रौर यथार्थवाद के नारे बुलन्द्द करने पड़े।

द्वितीयत : प्रगतिवादियों का श्राग्रह्र साम्यवाद पर है । मार्क्म ने ख्वयं कहा था कि कोई भी ग्रवस्था ग्रन्तिम्न नहीं होती, प्रतएव साम्यवाद को भी परिवर्वित होना पड़ेगा। समय-रूपी दिवालघड़ी का लटक्कन करी ब्यक्तिवाद से साम्यवाद की की ग्रोर श्रौर कभी साम्यवाद से ठ्यक्तिवाद की ग्रोर ग्याए-जाता रहता है। घोर साग्यवाद और घोर-व्यक्तिताद दोनों ही ग्रनुचित हैं। ऐसा कोई समाज नहीं जिसमें व्यक्ति न रहते हों, ग्रौर समाज में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिस पर समाज की छाप नहीं। ध्यक्ति के ग्रांख, नाक, कान श्रौर निजी रंग रूप तक श्रन्ततोगरवा समाज की ही देन हैं।

त्रतीयतः हिन्दी के श्रनेक प्रगतिवादी कथाकार श्रति-यथार्थव-दी हैं । वे नग्न-चिश्र्णा को ही सच्चा मार्क्सवाद समभते हैं। हेय नगन्न चित्रारा से लेखक की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है, समाज कलुषित होता है ग्रौर प्रगतिवाद को भी धक्का लगता है।

चतुर्थत: शौली ग्रौर भाषा की दृष्टि से प्रगतिवादी साहित्य उचच स्तर का नहीं बन पाया। यह्र ठीक है कि प्रगतिवादी साहित्य को जन-साहित्य होना चाहिए, श्रतएव उसे सरल भाषा में ही उर्पस्थित होना चाहिए, किन्तु सरलता का यह ग्रर्थ नहीं कि स्तर नीचा हो जाय। यदि चटकीली

रेशमी साड़ी में चम₹कार होता है, तो शुद्ध श्रौर स्वच्छ खद्र की साड़ी का माधुर्य भी निराला होता है।

पंचमत: छन्द श्रौर ग्रलंकारों की सप्रयत्न उपेक्षा वांछनीय नहीं । श्रच्छी कविता के लिथे छन्द श्रौर ग्रलंकार की विशोष ग्रावश्यकता नहीं। यदि सत्कवि उनका श्रावाहन नहीं करता, तो वह उनका तिरस्कार भी नहीं करता। सर्काष्य में छन्द श्रौर छलंकार सोने में सुगन्ध के समान हैं। प्रगतिवादियों पर यह लान्छ्धन लगाचा जाता है कि वे झ्रपनी विचार-धारा को ग्रात्मसात् नहीं कर पःये, ग्रथ्थात् वे उसे ग्रपनी बुद्धि का ही विषय बना सके, हृदय की वस्तु नहीं बना पाये, श्रतएव उनकी रचनाग्रों में शुष्क विचार हैं, ग्रनुभूति का श्रभाव है। कुछ गण्य-मान्य समालोचकों को शिकायत है कि प्रगतिवादी साहित्यकार स्बयं किसी पूंजीपति से कम नहीं। 'पहाड़ियों के वैभवपूर्यां वातावरएा में बैठकर निरिचंतता से मजद्रूरों के दु:खदर्द के गीत लिखे जा सकते हैं, किन्तु उनमें श्रनुभूति की सजीवता श्रा जाय गह् ग्रावशयक नहीं' । हमें यह ग्रालोचना श्र्रतरंज़ित प्रतीत होती है। संसार में सभी स्तर के लोग होते हैं। जो राजवंश में श्रथवा धनीं कुलों में जन्म लेते हैं, उनका श्रभ्यास उन लोगों के देखे भिन्न होता है जिनका जन्म ग्रकंकचन धर ग्रौर दारिद्रय-पूरां वातावरखा में होता है। फिर भी समृद्ध व्यक्ति हृदय से दीनों के दुख से द्रवित श्रौर प्रयत्नशील पाये गये हैं, ग्रौर पाये जाते हैं। अ्रतएव सोफ़ा पर बैठकर दीन-दुःख पर लिखनेवाला व्यक्ति नगष्य या निकृष्ट ही हो, यह ग्रावश्यक नहीं । रही श्राडम्वर पाखण्ड ग्रोर धोका-धड़ी की वात, वह् तो सभी वादों में मिलेगी, कायावाद, छायावाद, मायावाद सभी में । हमें यह्ह झ्रवश्य मानना पड़ेमा कि भले ही प्रगतिवाद ने कोई प्रत्यन्त उच्चकोटि का साहित्र्य प्रदान न किया

हो तथापि यह क्या कम है कि इसके प्रभाव से सभी वर्गों के साहित्यिकारों के दृष्टिकोएा में पर्या्त्त विकास हुग्रा है ?

विषय का सिंह्हावलोकन करते हुए हम कह सकते हैं कि वर्त्त मान ग्रौर भविषय का संइलेखरा हो प्रगति है । यह यथार्थ ग्रौर ग्रार्दश की संरिलष्टि है। इसमें वत्त मान से (ग्रथवा वर्त्त मान के वृहत् रूप से) श्रसन्तोष श्रौर भविष्य के प्रति ग्राकांक्षा की सत्ता है। प्रगनि मे 'है' ग्रौर 'है नहीं’ का सामञ्जस्य ‘होने’ में है, 'इज़’ ग्रोर 'इज़नांट' का 'विकमिङ,' में, ग्रथवा 'ग्रस्ति' ग्रौर नास्ति' का भवति' में । प्रगति में दो विरोधी तत्व्वों का विरोध तथा उन दोनों विरोधों के सामः्जय की प्रतीति उच्चतर तत्व में हाती है।

ऐसे सामझ्जस्य की भावना प्राचीन भारत में रही है। दार्शंनिक विचारधारा में ऐसे ग्रीपनिषदिक वचन मिलते हैं यथा ग्रसोरसीवाने महतोमहोयान्न'। बल्लभ-सम्पदाय की वेदान्त चिन्तामरिए में तथा श्रन्य ग्रन्थों में भी ऐसा भाव fिलता है कि कि ब्रह्म सब विरद्ध धर्मों का ग्राधार है ।जैनों के स्याद्वाद में यही तथ्य निहित है। परिचमी विद्वानों ने भी इस श्रोर ध्यान दिया। ल्लेटो ने 'डाइलौगो' में सत्य का दर्शंन किया। जर्मन के प्रसिद्ध दर्शनिक हीनिल का थीसिस (वाद) एण्णनौथिस (प्रतिवाद) श्रौर उनका सिन्धेसिस (संवाद) प्रसिद्ध ही है। हीगिल ने जीव, जगत्, ईरवर ग्रादि के सम्वन्ध में उत्त कल्पना की, किन्तु कार्लमावर्स ने इस विचारधारा का उपयोग सामाजिक हृषि काएा से कियद है । उनका सिद्धान्त 'द्वन्द्वार्मक भौतिकवाद’ कहलाता है । प्रगतिवादी हिन्दी कविताएं हीगिल की दार्शंनिकता श्रौर मार्क्स की सामाजिकता से प्रभावित हैं। प्रगतिवादी सीक्टत्य दर्शन-धर्म से इतना पभावित नहीं, जितना राजनीनि से है ।

प्रर्गतवादीं कवितगग्रों में समाज के कुस्सित ग्रौर वीभल्स रूप का भी चित्र्रा है। इसके साहित्य में जमीदार-पुलिस के ग्रत्याचार किसानों पर; सरकार के जनता पर; पूँजीपतियों के मजदूरों पर; ग्रौंर सूदखोरो के निर्धनो पर प्रद्रांत किये गये हैं. जिस काराता कुछ विचारक प्रगतिवाद में साम्यवाद का श्रभास पाते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है "प्रगतिवाद में जीवन के प्रकृत, कुसित एवं विस्तृत रूप के चित्र्रा को प्रधानता मिली है, क्योंकि जीवन का यही रूप वास्तविक और ग्रधिक उपयोगी है।" भौतिकवादी होने के कारा इस वाद की ग्रास्था ईखवर ग्रौर ग्रात्मा में नहीं; वह सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक ग्रौर सार्मत्यक रूढ़ियों का भी विरोधी है। उसके लिए ‘दिंगल शास्त्र का महत्व श्रधिक नहीं'। कुच्छ प्रग्गतिवादी तो महीवां वाल्मीकि, महाकवि कालिदास, गोख्वामी तुलसीदास’ एवं मनीषी जयरांकर पसाद जैसे उच्च साहिल्यकारों को प्रतिकियावादी घोषित कर देते हैं । ख्वामी दयानन्द सरस्वती ने न केवल सत्यार्थ प्रकास के द्वारा मानव की ग्रालोचनात्क प्रवृत्ति को प्रतुद्ध किया ग्रपितु हिन्दी को गौरव भी प्रद।न किया। भारतेन्दु हरिर्चन्द्र और उनके साधियों ने राष्ट्रीयता को प्रदोप्त किया । पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी व्याकरश्या के घास-पात को उखाड़ कर उसे बहुत कुछ व्यवस्थित किया।

रीतिवादियों से उकताये हुए छायावादियों ने रहस्य-जलदों को विदीयां करने के लिए नवीन कल्पना-छंनी का प्रयोग किया, श्रोर कदाचित् कुछ प्रतिभाशालियों ने घन-पट को विदीरां कर 'उस पार' का भी दूंन कर लिया हो। प्रेमचन्द जी ने सामाजिक यथार्थ को ग्रादर्श की ग्रोर, लासो शब्दों के द्वारा सफलता पूर्वक, प्रेरित किया। म्रंग्रेजों से संघर्ष करते समय ग्रनेक नवयुवकों ने

उत्साह-पूराँ एवं संगीतमय रचनाएँ कीं 1 इन सभी ने भारत का ग्रौर भारत के साहित्य का कुछ न कुछ कल्याएएा श्रवइय किया, सभी ने भारत को प्रगति-पय पर श्रग्रसर किया । रवर खींचने के बाद सिकुड़ती भी है। गुरुदत्त जी झ्यपने उपन्यासों में संयुक्त-परिवार श्रादि कतिपय प्राचीन उ्यवस्थाग्रों में भी सार परखते हैं । उनके लेख परिचमी चश्मा वालों के लिए चेताबनी प्रदान करते हैं। पं० हृरिरांकर शर्मा ने ग्रपने युग के समाज की कैसी व्यंग्याट्मक ग्रालोचना की है, कैसी मीठी चुटकियाँ ली हैं, क्या चुंगी. क्या कविसम्मेलन, क्या समाचार पत्न, सभी स्थГनों में उनकी पहुँच रही । वे प्रगतिवादी मले ही न हो, किन्तु उनकी प्रतिभा यथार्थ का एक्सरे करती है; किन्तु इसीलिये कि उसका सुघार हो, उसका रूप सुन्दर ग्रौर कल्यंरामय हो। जहाँ मार्क्स समाज-कल्याया के लिए उद्यत हैं वहाँ फ्राँयड व्यक्कि-कल्याशा के निमित्त कुंठा कीडाश्रों को प्रकाशा में लाते हैं। फॉयड की धारएा। से मतभेद हो सकता है परन्तु उसमें सार ग्रवइय है। डां० नगेन्द्र ने तथा कुछु ग्रन्य लोगों ने भी हिन्दी जगत् में इसकी कुछ चर्चा की है, जिससे यह स्पष्ट है कि साहित्य मौन भावना से कहाँ तकु प्रभावित रहता है।

प्रगतिवाद को किसी उपदेशा की ग्रपेक्षा नहीं। नया मुसल्ला ग्रल्लाह-झ्रल्लाह पुकारता है। यदि कोई प्रग्गतिवादी कभी-कभी जोश में इधर-उधर

बहक भी जाता है तो कोई चिन्ता नहींद्रा प्रत्येक व्यक्ति ग्रपनी भूल का ग्रनुभव स्वयं कर लेता है, श्रथवा उसकी भूल स्वयं प्रतिक्रिया के विविध रूपों में प्रस्फुन त हो जाती है।

श्री शिवदानसंसह चौहान, श्री रामविलास शार्मा, श्री ग्रमृतराय तथा श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त इस शैली में प्रमुख श्रालोचक है। इनके ग्रतिरिक्त ग्रन्य प्रगतिवादी लेखकों में है सर्व श्री निराला, राहुल, रांगेयराघव, यगपाल, कृष्गाचन्द्र, नागार्जु न, भगवत्रार एा उपाध्याय, चन्द्रब्नलीसिम्, नामवरfसंह ग्रादि । जिस चाद के समर्थक, पोषक, प्रशंसक, ग्रथवा सहानुभूति-प्रदर्शांक ऐेसे लब्ध-प्रतिष्ठ ग्रौर प्रतिभाशाली व्यक्ति हों उस वाद का भविष्य उज्ज्वल है, ऐसी ही श्राशा करन चाहिए। वास्तनिक ‘‘्रगतिवाद’ को रुढ़ियों की प्रतिष्ठा अौर रुढ़ियों के उत्घाटन का सामब्जस्य ही ग्रभीष्ट होना चाहिए। महाकवि कालिदास के ईब्दों में, जो कुछ पुराना है वह सभी साधु नहीं, जो कुछ नवीन है वह सब श्रनवद्य नहीं । नवीन ग्रौर प्राचीन दोनों की परीक्षा करके ही विद्वान् तथ्य को ग्रह्ता करते है ।

> पुराएा मित्येव न सत्धुसर्वं
> न चर्गि काव्यं नव मिल्यवन्यम् ।
(मालवि० १, २)

(40)

## हिन्द्धी परिषद्ध पगत्ति के पथ्न पए

भीमसैन मित्तल (प्रधान)

गत वर्षों की तरह इस वर्ष भी हिन्दे परिषद् की कार्यकारियी के पद,धिकारियों का चुनाव २२ स्रगस्त १९६६ को इस प्रकार हुग्रा :-प्रधान:-भीम सैन मित्तल--हिन्दी (ग्रानर्स) श्रंतिम वर्ष उपप्रधानः-सरोज बाला-लिन्दी (ग्रानसं) द्वितीय वर्ष मन्त्री:-रमेश कुमार चिश्रा-हिन्दी (ग्रानर्स) द्वितीय वर्ष) उपमः्री:-श्रेष्ठा कुमारी-हिन्दी (श्रानस) प्रथम वर्ष
(१) श७ ग्रगस्त ६र को नई देहली की "चौधरी लिटरेरी सोसाइटी" की तरक से हुई 'भीम संन मित्तल वैजयन्ती" झ्रन्तः कालेज वादविवाद प्रतियोगिता में, 'देड बन्धु कालेज' के तेज कृष्या भाटिया हिन्दी अ्यानर्सं (ग्रन्तिम वर्ष) एवं बलभद्र प्रसाद श्रोभा-दी. एससी. श्रन्तिम वर्ष ने कमश: प्रथम एवं द्वितीय पुरसकार प्राप्त कर वैजयन्ती जीती। अ्मत: परिषद् दोनों छानों को बधाई देते हुए भविष्य के लिये शुभ कामनाए" प्रकट करती है
(२) ३ सितम्बर द६ को 'जानकी देवी महाविद्यालय' में सुप्रसिद्ध कवि 'श्री नरेंन्द्र शर्मा की अ्रध्यक्षता में हुई ग्रन्तः कालेज कविता-प्रतियोगिता में देशबन्धु कालेज की श्रोर से भीमसंन मित्तल, तेजकृष्या भाटिया ग्रौर बलभर्र प्रसाद ग्रोभा ने भाग लिया। तेज कृष्णा भाटिया ने तृतीय पुरस्कार प्राप्त किया। ग्रतः परिषद् तेज कृष्या भाटिया को बधाई सर्मापत करती है।

## परिपद् कार्यक्रम

परिषद् के तत्वावधान में र सितम्बर ६ヶेको "डावटर ग्रोम प्रकाइा", (रोडर, हिन्दी विभाग, देहलीं विश्वविद्यालय) का "हिन्दी साहित्य के श्रादिकाल" शीर्षंक पर भाष्वशा झ्रायोजित किया गया। भाष्या हिन्दी पढ़ने जाले सभी छात्रों व छात्राश्रों के लिये श्रत्यन्त उपयोगी था। परिषद्द डाक्टर साहिब के प्रति ग्राभार प्रकट करती है ।

## परिषद् का इस वर्ष का ग्रागामी कार्यक्रम

इस वषं के ग्रागामी कायंक्रम के ग्रन्तर्गंत हैं:-
(!) "रायबह्हादुर जोधामल कुठारिया चल वैजयन्ती' श्रन्त: कालेज वाद-fविवाद प्रतियोगिता
(२) "श्री भीम सैन मित्तल चल बैजयन्ती" श्रन्तः कक्षा कविता-प्रतियोगिता
(३) ग्रन्तः कक्षा वाद-विवाद प्रतियोगिता
( $($ ) कवि-सम्मेलन
(x) विविध विषयों पर हिन्दी के सुर्रसिद्ध साहित्यकारों तथा श्रालोचकों के भाषएा भ्वादि का ग्रायोजन उल्लेखनीय है।

श्रन्त में मैं श्री राम लाल वमर्मा (परामर्शादता) का जिनके संचालन में परिबद् सुचारु रूप से कार्यं कर रही है एवं परिषद् के सभीं सदस्यों का उनके सहयोग के लिये कृतज हैं।

## इस कर्क के पुरखकाए

इस वर्ष हमारे परिषद-सदस्यों ने विशवविद्यालय के विभिन्न कालेजों में वाद-विवाद एवं कविता प्रतियोगिताग्रों में सोत्साह्ं भाग लेकर निम्न पुरस्कार प्राप किए-
१. चौधरी लिटरेरी सोसाइटी-

ट्राफी-देश बन्धु कालेज प्रथम-तेज कृष्या भाटिया द्वितीय-बल भाह ग्रोका
२. श्रीराम कालेज ग्राफ कामसं-
(म्रन्तः कालेज बाद-विवाद)
द्वितीय पुरस्कार—सुरेन्द्र प्रानन्द
3. श्रीराम कालेज ग्राफ कामर्स-
(ग्रखिल भारतीय वाद-विवाद)
तृतीय पुरस्कार—बलभद्र प्रोभा
૪. लेडी श्रीराम कालेज-
(ग्रम्तः कालेज वाद-विवाद)
द्वितीय पुरक्कार—चुरेन्द्र श्रानन्द्र
४. जानकी देवी महाविद्यालय-
(ग्रन्त: कालेज कववता प्रनियोगिता)
तृतीय पुरस्कार-तेज कृष्या भाटिया
६. दयाल सिंह कालेज-
(अ्रन्त: कालेज क.विता प्रतियोगिता)
तृतीय पुरस्कार-अ्भनिल कुमारी

## देश बन्धु कालेज (परिषद के कार्यकम)

१. ग्मन्त: कालेज वाद-विवाद-
(राय बहादुर जोधा मल कुठालिया ट्राकी)
ट्राफी-रामजस कालेज
प्रथम-श्री मरवाहा
द्वितीय-के० खोसला
तृतीय—गीता भट्ट
२. श्मन्त: कक्षा कवितः प्रतियोगिता-

$$
\begin{aligned}
& \text { ट्राफी—बी.एस.सी. तृतीय वर्ष } \\
& \text { प्रथम—बल भद्र ग्रोभा } \\
& \text { द्वितीय-सुभगग माथुर } \\
& \text { तृतीय-निभुजन कौल }
\end{aligned}
$$

३. श्रन्त: कश्रा बाद-विवाद प्रतियोगिता-

ट्राफी—इक्नोमिक्स भ्रानरं प्रथम-सुरेन्द्र श्रानन्द द्वितीय-ग्रभय कुमार
૪. भाषखा माला-

छान्रोषयोगी भाषा माला के ग्रन्तर्गत इस वर्ष म्रक्ट्रबवर में बढ़ैदादा विशवविद्यालय में प्राध्यापद मरिएक लाल चतुर्वेंदो ने "भाषा विज्ञान के अ्रध्ययन के मुख्य स्रंग" विषय पर भाषएा दिया।

> יو رزمها لاءواطي

$$
\begin{aligned}
& \text { پاطِ سنيطل } \\
& \text { - } \\
& \text { •, , , } \\
& \text { 4. }
\end{aligned}
$$

> ؟
> شايل ! با,

> , 得
> بلفـرا

> ?
> "
> إ الـيه كي لـيكي

> الهيع كان أه جو 3 ه
> :
> إـكأي
> سعهوي ني
> 5
> 5
> •
> y UELS
> 3 و 8
> , , j,
> -
> لون بـ جـسا, جر
> •
> كا
> صـو كش

> ليعو باء
> با كي
> ذ

$$
\begin{aligned}
& \psi^{B^{3}} \\
& \text { 1 } 4 \\
& \text { 我 } \\
& \text { 密 }
\end{aligned}
$$

$$
\begin{aligned}
& \text {, , } \\
& \text { ي } \\
& \text { ? } \\
& \text { ? 倍 } \\
& \because \\
& \text { S } \\
& -9 j, T \leq{ }^{T} \\
& \text { * } \\
& \text {, ge }
\end{aligned}
$$

$$
\begin{aligned}
& \text { 年 } \\
& \text { 安 } \\
& \text { 里 bj } \\
& \text { - 草 } \\
& \text { 家 } \\
& \text { Q }
\end{aligned}
$$

$$
\begin{aligned}
& \text { با } \\
& \text { ا } \\
& \text { L0 }
\end{aligned}
$$

$$
1
$$





 لـ;

## ( بهو س) (

.
لد

سمتداس جهانــيالئي

"

وا, يx جها كمر

نـاني


- اسسن بي

ك

筷






> إهي
> هـي





 آلي دإش هي شيوا هكر ى سكهن.




 ذ源



اب
3
-苑



 :



 لد لد















" هي罒 ?多
 － سها الَّيا ＊ －
 －

竞


e 家 －

：
ب


－أكْ

！
1



بثي
（
（1）
－

1月 ن
（
به
（0）
i ${ }^{10} 0$ ，
（ ج
－0）
（

## 06

## بـدتل كهواثمي

ك
 ，

 ，
號
共药
隹 ＋








范

دل - لّ



 S
 سان شا شا
四

$$
\text { ?ي سnني } 1 \text { د }
$$

كهبه, و3.








أهو



 لو ها
 هنها

而

布

病居 ．．．．．．．．．كن，
هon

 هو ن ها


范 ———＂ ＂ ي З，
有 ！أه


 ＂إي
او أهr oh ol
 د



隹




共


促




质







亲
 سر ， إيشو，



 بو سـلّ بي لو بو كيندا． سina

为（ ）


$1: \Delta 1] \quad[1 \cdot: \mathrm{Jlo}$

## 

كالNه
 ها
共居隹
。



# Editorial Board 

Editor-in-Chief

Shri Radha Krishna Sud

## English Section

Staff Editor
Student Editor

Staff Editor
Student Editor
Staff Editor
Student Editor

Staff Editor
Student Editor

Staff Editors

Staff Editor

Shri Y. P. Dhawan
Shyamal Bagchee
Hindi Section
Mrs. Raj Kumari Parshad
Tej Krishna Bhatia

Sanskrit Section

| … | Shri Manohar Lal Chaudhri |
| :--- | ---: |
| … | Virendra Pahuja |

## Sindhi Section

...
...
Urdu Section
...
N. C. C. Section

Edited and published by Shri R. K, Sud Editor-in-Chlef, for Deshbandhu College, Kalkaji, New Delhi and printed at the Mahajan Press, Connaught Place, New Delhi.


[^0]:    ${ }^{1}$ H.V.R. lenger: 'P.M. at Work,' in a 'Study of Nehru,'
    ${ }^{2}$ Namboodiripad, 'A Democrat in the Dock,' in a 'Study of Nehru' by Zakaria.

[^1]:    * Speach delivered by Principal (Dr.) Amba Prasad at the NCC pledge Day Parade held in the college.

